ISSN : 2321-3922
जुलाई–2014

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई–2014

संस्थापक–सह–प्रबंध संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संरक्षक
डॉ. विजय कुमार सिंह

सम्पादक
डॉ. अश्विनी
डॉ. जी.पी. सिंह

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्थायी सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री धनञ्जय प्रसाद मण्डल 'अजित'
श्री विनय कुमार
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
श्री शिवनन्दन सिंह
श्री मुरलीधर शर्मा

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक। रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 09570838880
वेबसाईट : www.sambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.sambhavya.com

आमंत्रण

'संभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णत: नि:शुल्क हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 48 देशों के पाठक सहित भारत के 80 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.sambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्तूबर–2014 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रचनाएं अपने पत्राचार के पता के साथ मेल करें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–

E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
E-mail : gpsingh@sambhavya.com

डॉ0 अश्विनी
संपादक, संभाव्य

डॉ0 जी.पी. सिंह
संपादक, संभाव्य

ISSN - 2321-3922

अनुक्रम

1	पुरोवाक्	संस्थापक की कमल से	श्री दयानन्द जायसवाल	5
2	आख्यान	मानसिक उत्थान में योग की भूमिका	डा0 अलका अग्रवाल	6
3	उमरते घुमरते विचार	ये कभी सोचा न था	डॉ0 जी0पी0 सिंह	8
4	कविता	फूल चंपा के	रजनी मोरवाल	8
5	कहानी	नदी चुप थी	पी. एन. जायसवाल	9
6	गजल	हम लोग अपनी राह की...	शायर अशोक मिजाज़	12
7	आलेख	सुमित्रानंन्दन पंत के काव्य में बिम्ब विधान	डॉ0 अनुराधा दूवे	13
8	कविता	आओ तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ	संयुक्ता गुप्ता	17
9	आलेख	आधुनिक हिन्दी कविता में अभिव्यक्त सांप्रदायिक सद्भावना	डॉ0 शेख अब्दुल वहाव	18
10	कविता	बेटी बचाओ	संजय वर्मा 'दृष्टि'	20
11	समीक्षा	निराला की काव्य–साधना	डॉ0 बहादुर मिश्र	2
12	गजल	आज तक	डॉ0 अनिल मिश्र	23
13	कहानी	आम आदमी	नाजमुन नवी खान ''नाज''	24
14	कविता	तपती रेतगर्मी	मंजुल भटनागर	25
15	समीक्षा	पत्रकारिता एक कौशल	दयानन्द जायसवाल	26
16	लघु शोध	मैथिली शरण गुप्त की दृष्टि में ''गुरुनानकदेव जी'' का व्यक्तित्व	धर्मेन्द्र कुमार	28
17	कविता	थका हूँ बहुत...	कृष्ण मोहन सिन्हा ''किसलय'	32
18	कविता	माटी का घड़ा	ई0 भरत कुमार सिंह	32
19	आलेख	कामायनी में 'लज्जा' और 'सौंदर्य' की अभिव्यंजना	शतदल मंजरी	33
20	कहानी	चम्पा का दर्द	अजीत कुमार	38
21	कविता	एकान्त के अन्धेरे में	दिव्या शुक्ला	40
22	समीक्षा	जनवाद के नवल कंठ अरूण कमल	डॉ0 आलोक प्रखर	41
23	कविता	हे पार्थ!	ई. दीप्ति शर्मा	44
24	कविता	पुरानी डायरी से	शैलजा पाठक	44
25	लघुशोध	सुभद्र कुमारी चौहान और राष्ट्रवाद	डॉ0 सुनिल कुमार परीट	45
26	लोकवाणी	....		47

यहाँ सब कुछ बिकता है
दोस्तो रहना जरा संभल के
बेचने बाले हवा भी बेच देते हैं
गुब्बारों में डालके
सच बिकता है
झूठ बिकता है
बिकती है हर कहानी
तीन लोक में फैला है
फिर भी बिकता है बोतल में पानी
कभी फूलों की तरह मत जीना
जिस दिन खिलोगे...
टूट कर बिखर जाओगे
जीना है तो पत्थर की तरह जीओ
जिस दिन तरासे गये...
भगवान बन जाओगे ।

—हरिवंशराय 'बच्चन'

पुरोवाक्

संस्थापक की कमल से

समाज को उन्नतशील बनाने के लिए शिक्षा एक अनिवार्य तत्त्व है। इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान को प्रकाश रुप माना गया है जो अज्ञानता रुपी अंधकार को दूर करता है। समाज में जिस प्रकार की संस्कृति, परम्परा और मान्यताएँ प्रचलित होती हैं; शिक्षा व्यवस्था भी उसी के अनुकूल की जाती है, पर स्मरणीय है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भावी सामाजिक जीवन की सफल योजना या तैयारी करना एवं संस्कृति, सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीयता, विश्व बंधुत्व और मानव कल्याण की भावनाओं को संबर्धित करना है।

जो शिक्षा समाज को संस्कार देती है यदि वह सर्वग्राही भ्रष्टाचार के चंगुल में फँस जाय तो समाज का संस्कार ही असम्भव है, क्योंकि भ्रष्टाचार जीवन–मूल्यों के पतन की भूमिका सशक्त मनोवैज्ञानिक हमले के जरिए तैयार करता है। व्यक्ति के चरित्र के साथ–साथ सामाजिक आदर्श और मानवी मूल्यों पर भयानक आक्रमण करता है।

प्रकृति में कहीं भी नजर डालें तो उपर से भले ही हमें असमानता व विरोधाभास नजर आता है, किन्तु गहराई से देखने पर हमें सर्वत्र एकता के दर्शन होते हैं। प्रकृति में सूर्य, चाँद, तारे, ग्रह–उपग्रह इत्यादि सभी गत्यावस्था में हैं, किन्तु सारी व्यवस्था शांतिपूर्ण ढंग से चल रही है जबकि हमारी पृथ्वी पर हाहाकार मचा हुआ है। इसका मूल कारण विवेक, धैर्य व प्रेम को भुलाकर मनुष्य भौतिक लिप्साओं की भूख को संतुष्ट करने के असफल प्रयास में जुटा है। मेरा देश, मेरी भाषा, मेरा धर्म, मेरी जाति और भी न जाने कितने मेरी–मेरी की लड़ाई में मनुष्य का मनुष्यत्व कहीं खोता जा रहा है।

औद्योगिक विकास एवं यांत्रिक जीवन ने हमारे सामाजिक मूल्यों में, वैचारिक जगत में, दृष्टिकोण एवं मान्यताओं में एक विद्रोहयुक्त नवीनता और भौतिक सम्पन्नता को विकसित कर सारी परंपराओं और आस्थाओं के सामने प्रश्न चिह्न लगा दिये हैं। भौतिक जगत में आर्थिक एवं सामाजिक दवाबों के बीच नर–नारी के कोमल–मधुर–संबंध तनाव से भर कर टूट रहे हैं।

तीव्रता से बदलते सामाजिक परिवेश में व्यक्ति की मर्यादित–स्वतंत्रता का सवाल आ जुड़ता है जिससे यह टकराहट विकराल हो उठी है। आज परंपरागत दृष्टि नये जीवन मूल्यों को हेय–दृष्टि से देखती है और नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी की दखलंदाजी अरूचिकर प्रतीत होती है। यह विक्षोभ वर्त्तमान काल में पुरानी और नवीन पीढ़ी के मानसिक अलगाव की सूचना भर नहीं देता, बल्कि उस भयानक मनोवैज्ञानिक अन्तराल का दर्शन भी कराता है, जिसके कारण पूरा सामाजिक परिवेश स्थाई रूप से तनाव, घुटन और कुंठाओं के धुँए से व्याकुल रहने लगा है। नवीन वातावरण में उन्मुक्त जीवन–पद्धति अपनाने के लिए ललायित वर्गों को संस्कृति और संस्कार समझना एक दिन आवश्यक हो जायगा, क्योंकि यह मानसिक उथल–पुथल और विघटन का दौर समाज को अन्दर ही अन्दर खोखला कर रहा है।

समकालीन सहित्यिक पत्रिका संभाव्य में सामाजिक परिदृश्य के यर्थाथ को समग्रता से प्रस्तुत करते हुए विभिन्न समस्याओं का चित्रण और उनके कारणों की तलाश की आकांक्षा प्रभावित करती है, क्योंकि आम लोगों की समस्याओं से आँखें मूँद लेने की प्रवृति ही वह सबसे बड़ी समस्या है, जो व्यक्ति और समाज के निरंतर संकट ग्रस्त रहने का कारण है।

संभाव्य में आए सभी रचनाकार अपनी दार्शनिक और बौद्धिक चेतना की अपेक्षित भूमिका से ही पत्रिका को उत्कर्षता प्रदान कर रहे हैं ।

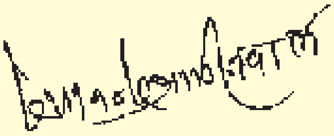

आख्यान

मानसिक उत्थान में योग की भूमिका

डा0 अलका अग्रवाल
एसोसियेट प्रोफेसर
स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय चंदौसी
उत्तर प्रदेश

जर्मनी के ख्यातिलब्ध दार्शनिक एवं अध्यात्मवेत्ता शोपेन हॉवर के शब्दों में ''किसी राष्ट्र की युवा पीढ़ी उसकी 100 प्रतिशत जनसंख्या तो नहीं हो सकती, परन्तु उस राष्ट्र के 100 प्रतिशत भाग्य का निर्धारण अवश्य करती है।'' क्योंकि युवा ही समाज का वह कार्यकारी अंग होते हैं जो राष्ट्र निर्माण में अपना सक्रिय योगदान देते हैं और यदि हमारे युवा स्वस्थ होंगे तो स्वाभाविक रूप से राष्ट्र की समग्र प्रगति में पूर्ण मनोयोग योगदान भी दे सकेंगे।कहा भी गया है कि ''स्वस्थ शरीर चाँदी से अधिक कीमती है, उदार हृदय सोने से भी अधिक मूल्यवान है और पवित्र मन की कीमत बहुमूल्य रत्नों से भी अधिक है।''

मानवीय मस्तिष्क को कल्पवृक्ष कहा गया है। उत्थान और पतन की सारी संभावनाओं का केन्द्रबिन्दु यही है। इसे विकसित एवं परिष्कृत कर मनुष्य सब कुछ हस्तगत कर सकता है जो उसके जीवनोद्देश्य को पूर्ण करने में सक्षम है।वर्तमान युग में तनाव, भौतिकतावाद, प्रदूषण और कार्य व्यस्तता के परिणामस्वरूप व्यग्रता बढ़ने से मानव तन और मन दोनों ही व्यथित है एवं अपने वास्तविक स्वरूप से भटक गये हैं। उसके अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी होने में संतुलन नहीं रहा है। अतः आधुनिक युग में योग का महत्व बढ़ गया है।सविकल्प बुद्धि और निर्विकल्प प्रज्ञा में परिणित करने हेतु योग साधना का महत्व सर्वमान्य स्वीकृत है। यह भी सर्वविदित है कि मनुष्य अपनी अगणित आकांक्षाओं की पूर्ति तो नहीं कर सकता है किन्तु योग–साधनाओं द्वारा उन्हें नियंत्रित अवश्य कर सकता है।स्वयं भगवान श्री कृष्ण द्वारा भीमद् भगवद्गीता के छठे अध्याय में अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा गया है कि –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृहते ।।
(गीता 6/35)

अर्थात – हे महाबाहो! निसंदेह मन बड़ा चंचल है यह रूक नहीं सकता परन्तु हे कौन्तेय! अभ्यास औ वैराग्य से यह वश में किया जा सकता है। तो मन को वशवर्ती बनाने के लिये आवश्यक है कि मन को शुद्ध भावनाओं और विचारों के चिंतन में लगाया जाये और इसका सर्वोत्तम माध्यम योग है।भारतीय धर्म और दर्शन में योग का प्रारम्भ शिव से माना गया है– 'ओम नमः शिवाय' अर्थात जो सत्य वह ब्रहम है – ब्रह्मा अर्थात परमात्मा।जो शिव है वह परम शुभ और पवित्र है जो प्रकृति है। अर्थात परमात्मा, शिव और प्रकृति में लीन हो जाना ही योग है।

प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रदत्त योगविद्या में विभिन्न यौगिक क्रियाओं का वर्णन है जिन्हें विशिष्ट तकनिकों के द्वारा हस्तगत किया जा सकता है।मानसिक स्थिरता एवं एकाग्रता का संबंध हमारे शरीर में विद्यमान प्राण की प्रकृति पर निर्भर करता है। जिसके चंचल होने पर शारीरिक एवं मानसिक रोग पनपते हैं। तथा मानसिक खिन्नता उदासी व थकान उत्पन्न होती है।जिसे विभिन्न यौगिक क्रियाओं में से एक आसान क्रिया हस्तमुद्राओं का अभ्यास करके अत्यन्त शीघ्रता एवं सरलता से प्रभावशाली ढंग से दूर किया जा सकता है।वस्तुतः मुद्रा विज्ञान परासाधना हठ योग का और योगतत्व विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है।हठयोग की खेचरी, अश्विनी, महामुद्रा, शांभवी, ताड़ागी, विपरीतकरंणी, उन्नवी आदि कुछ स्थूल मुद्रायें कही जाती है किन्तु इन्हें करना थोड़ा कठिन है एवं सतर्कता पूर्वक अभ्यासोपरान्त ही उन्हें करना चाहिए।हठयोग की मुद्राओं की अपेक्षा योगतत्व मुद्रा विज्ञान के अन्तर्गत आने वाली मुद्राओं को सूक्ष्म प्रक्रिया के अन्तर्गत माना जाता है एवं सहस्त्रों की संख्या में ये प्रभावशाली मुद्रायें पंचतत्वों की प्रतिनिधि हमारे हाथ की पांचों अंगुलियों के माध्यम से सरलता पूर्वक हमारे तन एवं मन पर प्रभाव डालती है। अंगूठा अग्नितत्व प्रधान, तर्जनी वायुत्व प्रधान, माध्यमा, आकाशतत्व प्रधान, अनामिका पृथ्वीतत्व युक्त व कनिष्ठा जलतत्व प्रधान मानी जाती है।इन्हीं पंचतत्वों की मात्रा में किसी प्रकार के असंतुलन से उत्पन्न विकृतियों के उपचार में मुद्रा विज्ञान का प्रयोग हमारे ऋषि मुनियों

द्वारा प्राचीन काल से ही किया जा रहा है। स्वस्थ मस्तिष्क के लिए शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा शक्ति की वृद्धि हेतु इस योग विधि का प्रयोग कर भावनाओं के विकास एवं परिष्कार में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की जा सकती है। मुख्यतः प्राणमुद्रा, ध्यानमुद्रा, संकल्पमुद्रा, अभयमुद्रा व ज्ञानमुद्रा इस प्रयोगजन हेतु अत्यन्त लाभकारी मानी गई है। इनके नियमित अभ्यास से मन को स्थिर, संतुलित एवं एकाग्र करने के साथ–साथ प्राण वायु रूपी चेतना का विकास भी क्रमशः होता जाता है। तत्पश्चात ध्यान द्वारा मनः शक्ति संवृद्धन की विधि अत्यन्त लोकप्रिय है। इसके द्वारा हमारे मस्तिष्क की विद्युतीय तरंगों का नियमन एवं नियंत्रण किया जा सकता है। वास्तव में हमारा मस्तिष्क एक ऐसे विशाल जलाशय के समान है जिसमें हवा का एक मामूली सा झोंका उसकी सतह पर भारी उथल पुथल मचा सकता है। मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली न्यूरान्स की विद्युत तरंगों की स्थिति भी कुछ ऐसी ही दृष्टिगोचर होती है, जो क्षण भर में अशांति एवं असंतोष की लहर दौड़ा सकती है। इसके कारण हमारी मानसिक शक्तियों को विशाल भंडार खत्म होने लगता है और व्यक्ति को अनेक प्रकार की बीमारियाँ घेरने लगती हैं।

आधुनिक मनोचिकित्सा विज्ञानी भी अब इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि अचेतन मन मस्तिष्क की गहन परतों में समाहित अदृश्य में छिपी दमित इच्छाओं वासनाओं आदि को नष्ट करने की प्रक्रिया को ध्यान साधना के माध्यम से पूरा किया जा सकता है।

सुदर्शन क्रिया, सहज समाधि मेडिटेशन आदि के माध्यम से भय उदासी मानसिक एवं शारीरिक दबावों एवं तनावों से मुक्ति, शांति, ऊर्जा, आत्मज्ञान, स्फूर्त्ति आत्मविश्वास एवं मानसिक प्रज्ञा में वृद्धि के सहज सुलभ प्रयोग किये गये हैं। डॉ0 राधाकृष्णन के शब्दों में ''हम संसार के घटना क्रम को और समाज में उत्पन्न हो रही उथल–पुथल को अपनी इच्छानुसार नहीं बदल सकते परन्तु हम अपने अंदर इतना मनोबल अवश्य उत्पन्न कर सकते हैं कि इनका कोई प्रभाव हमें किसी प्रकार भी विचलित न कर सकें।''

वर्तमान समय में देश के कर्णधार हमारे बच्चों विशेषकर युवा होते किशोर–किशोरियों के भविष्य को ध्यान में रखते हुये यदि उनमें जीवन जीने के प्रति सही दृष्टिकोण का विकास किया जाये, आने वाले तनाव व चुनौतियों से परिचित कराते हुये निपटने के लिए उचित समाधान बताये जायें तो निश्चित रुप से उनका जीवन फूल की तरह खिल सकता है। छोटे बच्चों की जिन मुस्कुराहटों को देखकर हम अपने गम भूला देते हैं जब वही बच्चे जिंदगी की बढ़ती राहों पर अपने कदम बढ़ाते हैं तो आने वाली परेशानियों का सही समाधान न पाने तनाव न झेल पाने व उचित सहारा न मिल पाने के कारण उनमें चेहरों की मुस्कान न जाने कहाँ चली जाती है। योग में इसका संपूर्ण समाधान उपलब्ध है। सूर्यनमस्कार, भ्रामरी प्राणायाम, ओम् उच्चारण इत्यादि योगासनों के माध्यम से स्मृति क्षमता में वृद्धि, मानसिक स्थिरता, एकाग्रता बढ़ती है। योगनिद्रा के अभ्यास से शारीरिक एवं मानसिक तनाव से मुक्ति एवं ऊर्जा में वृद्धि होती है। सूर्यनमस्कार के अभ्यास से रक्त संचार एवं मनोवैज्ञानिक प्रसन्नता की अनुभूति में वृद्धि होती है। भ्रामरी प्राणायाम से वायुकोशो में प्राणवायु का आदान–प्रदान बढ़ने से मस्तिष्कीय कार्यक्षमता पर प्रभाव पड़ता है।

योग का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि मनुष्य जाति को अब आगे और प्रगति करनी है, अंतरिक्ष में जाना है। नये ग्रहों की खोज करनी है। शरीर और मन को स्वस्थ व संतुलित रखते हुये देश को उत्तरोतर प्रगति पथ पर अग्रसर करना है। दरअसल योग भविष्य का धर्म और विज्ञान है। योग से एक शान्त, स्वस्थ संवेदनशील व समृद्ध राष्ट्र व विश्व का निर्माण होगा। योग से आत्मधर्म और राष्ट्रधर्म जगेगा। प्राणायाम एवं ध्यान से जब व्यक्ति का मन शांत हो जायेगा तो समाज, राष्ट्र व विश्व में व्याप्त भय, भ्रम, हिंसा, अपराध व भ्रष्टाचार भी मिट जायेगा।''

मेरे उमड़ते–घुमड़ते विचार

ये कभी सोचा न था

डॉ0 जी0पी0 सिंह
मो0–9431257315

रोज़–रोज़ सड़कों पर दौड़ते–भागते लोग, इस भागमभाग में बहुत दूर पीछे छूटते जा रहे रिश्ते, नई पीढ़ी के लिए अनजान और अनसुने बनते अपना और अपनापन जैसे शब्द, धूल–धूसरित ग्रंथों में कैद आदर्शों और मूल्यों से आच्छादित महापुरुषों के अनमोल वचन, चमक खोते चिंतक और विचारक, मूर्खों से उपदेश सुनने को बाध्य विद्‌वतजन, सत्य पर भारी पड़ते असत्यपूर्ण तर्क से न्याय–अन्याय की दुविधा के बीच पिसते न्यायाधीश, संस्कार और संस्कृति को बकवास समझती आज की संतति, उदास आँखों की दो बूँद नीर में गुजरे वक़्त के बनते–मिटते चित्र का सहारा लेकर ज़िन्दगी का आख़िरी हिस्सा काटते बुज़ुर्ग, कहीं अट्टालिकाओं में अट्टहास की गूंज, कहीं झोंपड़ी में विलाप करती विश्वग्राम की संभावनाएं, गुलमुहर, अमलतास, कचनार और कामिनी के सौंदर्य को ललकारती कंक्रीट की गगनभेदी इमारतों पर सजे प्लास्टिक के फूल, भयभीत होकर दूर भागते ब्रह्मांड, नज़रों से ओझल होते जगमग सितारे, ज़मीन पर जीना सिखाने के बजाय चाँद और मंगल पर जीवन तलाशते भौतिक विज्ञानी, रासायनिक खाद से पले–बढ़े जहरीली मानसिकतावाले बिलबिलाते नौनिहाल पर फ़क्र करते कृषि विज्ञानी, एक छत के नीचे रहकर भी एक–दूसरे का नहीं हो पाने जैसे क्षण में जमात में जीने का एकत्व–बोध कराते बंदर, बार–बार दुत्कार और तिरस्कार सहकर भी मरते दम तक साथ निभाने का कर्त्तव्य–बोध कराते कुत्ते।

हे ईश्वर ! तर्क के सिंहासन पर बैठे आज के इंसान में इतना बुनियादी बदलाव होगा, ये कभी सोचा न था।

शब्द–ब्रह्मम–साझी।

कविता

फूल चंपा के

रजनी मोरवाल
मोटेरा (अहमदाबाद)
मो0 : 09824160612

फूल चंपा के बिछुड़कर शाख से
गिर रहे हैं जो हरे दालान में

प्रश्न मन में कौंधता है रोज यह
गंध क्या बाकी बची होगी अभी
ये जवां कलियाँ चटखकर हैं गिरी
या हवा के संग बहकी हैं सभी?

टहनियों का ख़्वाब थी जो कल तलक
इस कदर बिखरी पड़ी अपमान में

बीनती हो क्यों, अगर जीवन नहीं
पूछते हैं लोग अक्सर चाव से
मैं उन्हें कहती कि नाता स्नेह का
जुड़ गया है प्रकृति के सदभाव से

गैर की खातिर खिला करते सदा
भेंट चढ़ते दूसरों की शान में

क्षणिक ही जीवन मिला है पुष्प को
भोर से लेकर अँधेरी शाम तक
जन्म हो या फिर मरण हर काम में
पुष्प को मिलता नहीं विश्राम तक

उम्र की लघुता कहाँ का प्रश्न है
जिन्दगी गुजरे अगर सम्मान में।

कहानी

नदी चुप थी

पी. एन. जायसवाल
सरगम/300, कोल्ड स्टोरेज रोड,
जवारीपुर, तिलकामांझी, भागलपुर (बिहार)–812001
मोबाईल नं0–09931420590

ऊँचे बाँध पर पाकड़ के नीचे बैठा हबीब मियाँ रो–रोकर थक गया। इस सुनसान जगह पर उसे चुप कराने आता ही कौन और यह तो लगभग रोज की बात थी। कुछ दिनों से वह इसी पाकड़ पेड़ की जड़ के पास आकर कुछ देर बैठता। रोता। गाता। उसके इस क्रिया–कलाप को पाकड़ पेड़ के अलावे नदी की धारा ही थी जो बिना रुके देखती, सुनती और बहती चली जाती। धारा के पास रुकने के लिये वक्त ही कहाँ था। वह जानती थी कि रुकने के साथ ही उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा और बिना रुके कोई हस्तक्षेप होता भी हैसे? देर तक रोने के कारण झुर्रियों से बने उसके चेहरे की अनगढ़ घाटियाँ सैलाबी हो गई थीं और बित्ते भर लंबी उसकी सफेद दाढ़ी में भी नमी भर आई थी।

उसका रोना धीरे–धीरे अजान की सदा के अंतिम अंतरा की तरह शांत हो गया परन्तु दिल में बच गयी रोने की आखिरी गूँज लट्टू की तरह घुमती रही। फोड़ा बनकर टीसती रही। बुढ़ारी में संभावित किसी दुर्गति की सोच से परेशान नहीं था वह। कब्र में जाकर दोजख और जन्नत की भी परवाह नहीं थी उसे। वह तो मोह–माया में अपने बच्चों और आनेवाली पीढ़ी के भविष्य को सोच–सोचकर विचलित होता रहता। उसने बंद नाक साफ किया और मन को नियंत्रित करने की कोशिश की। तार–तार हो रही ढीली– लुंगी का बंधन कसने के बाद धीरे–धीरे लाठी के बल उठकर खड़ा हो गया। कमर में दर्द रहने के कारण पूरी तरह खड़ा भी नहीं हो सका। आगे की ओर थोड़ा झुका रह गया। उसने सामने के कृषि क्षेत्र की ओर देखा। क्षणभर के लिए आँखों में एक कालखंड का चित्र निःस्तब्द होकर उभर आया और चला गया। दोनों कोरों में आँसुओं की बूँद लटक आयीं। हथेली से पोछते हुए वह नदी की तिरछी–गहरी ढलान पर उतरने लगा।

यह बरसाती नदी दक्षिण के पहाड़ों से पर्याप्त जल लाकर खेतों को सींचती और बहती हुई आगे जाकर गंगा नदी में समर्पित हो गई थी। पहाड़ों और बीहड़ों में अक्सर वर्षा होती रहती इसलिए बरसात में यह प्रायः भरी–पूरी रहती। क्षेत्र में कई छोटे–बड़े तालाब किसी विपरीत परिस्थितियों के लिये भरे रहते। नदी के बिल्कुल पास छोटे–छोटे टुकड़ों में पाँच बीघे जमीन थी उसकी। इस बरसाती उथली नदी में थोड़ी सी बाढ़ आती तो मजबूत बाँध की सुरक्षा लिये जलस्तर खेतों की सतह से थोड़ा ऊँचा हो जाता था। पटवन के लिये बनायी गई नाली होकर पानी उसके एक–एक खेतों तक पहुँच जाता। उसके खेतों की सतह उससे ऊँची थी। वहाँ तक पानी पहुँचने का अर्थ था अन्य किसानों के खेतों तक पानी का पहुँच जाना। बाढ़ के समय नदी पहाड़ी उद्गम से बालू बहा लाती। नये बालू का कुछ हिस्सा नदी के पुराने बालू पर पतला नया स्तर चढ़ा देता। उसी अनुपात में नदी का जलस्तर भी ऊँचाा हो जाता था। जल में घुली पीली–पीली नई मिट्टी आती जिसकी हल्की परत खेतों के ऊपरी सतह पर फैल जाने से धरातल भी ऊँची होती। इस प्रकार नदी और खेतों की ऊँचाई का प्राकृतिक संतुलन बना रहता है। खेतों में लंबे समय तक जल एक तरफ से प्रवेश करके दूसरी तरफ लिकलता रहता। रोपनी हो जाने के महीने भर बाद इस तरह की क्रिया लगातार दस से पंद्रह दिनों तक होती रहे तो धान–पौद पुष्ट हो जाते हैं। जल के साथ घुली हुई मिट्टी गोछी (गुच्छ) की जड़ के पास रगड़ उत्पन्न कर पौद की जनन–क्रिया और बृद्धि–क्षमता भी बढ़ा देती है। इस तरह धान के पौधे का गुच्छा मोटा हो जाता है। गुच्छा जितना मोटा होता है उसी के अनरुप फसल अच्छी होती है। प्रकृति के रहस्यमय प्रचालन–क्रिया के अद्भूत नियमों से हबीब हैरान होता रहता। अन्य किसानों की तरह वह भी इस बात को मानता था कि 'प्रकृति ईश्वर स्वरुप है। वह हमेशा अपना संतुलन बनाये रखती है।'

उसकी सोच थी 'अगर मनुष्य के आचरण प्रकृति के अनुकूल हों तो जीवन ज्यादा आसान हो जायेगा। प्रकृति से उत्पन्न होनेवाली कामनाओं एवं प्रवृतियों पर ही जन–जीवन आश्रित है।' जमीन में नई मिट्टी के आ जाने से खेतों में खाद डालने की जरुरत नहीं पड़ती। पानी की कमी नहीं रहती तो पौधों के साथ घास कम ही जन्म लेती। एक–दो निकौनी से काम हो जाता। गाद भी बनी रहती। धान के खेतों में गाद हमेशा बनी रहे तो किसानों के अनुमान से ज्यादा पैदावार होती है। यही कारण था कि इस नदी के क्षेत्र में धान की फसल कभी मरती ही नहीं। कम खर्च में सुन्दर खेती होती थी। माँ जैसी नदी को पाकर गाँव के किसान निहाल थे। कृषि का यह विस्तारित क्षेत्र 'धान का कटोरा' के नाम से विख्यात था। खरीफ की कटाई के बाद भी खेतों में लंबे समय तक नमी बनी रहती और रबी की भी अच्छी पैदावार मिलती । खेत सोना उगलता था। गाँव में रोजी–रोटी के नाम पर दु:ख का नामोनिशान नहीं था।

हबीब जब चालीस का हृष्ट–पुष्ट था तब अपने दोस्तों के साथ नदी की 'कल–कल' करती धारा पर 'छप्प' से कूदता और तैरता हुआ सौ मीटर की चौड़ाई एक दम में पार कर लेता। उस पार थोड़ी देर सुस्ताने के बाद पुन: तैरता हुआ वापस आ जाता और देर तक बाँध पर लेटा रहता। थकान दूर होते ही मेड़ों पर घुमता रहता अथवा गोरेलाल के आम वृक्ष की छाँह में गमछा बिछाकर जोर–जोर से लौरकैन (एक व्यथापूर्ण लोककथा जिसे गीतों में गाया जाता है) गाता या पाकड़ के पास घंटों बैठकर नदी की 'कल–कल' ध्वनि में खोया रहता। नदी की कोख जितनी भरी–पूरी होती है, 'कल–कल' की मधुर ध्वनि उतनी ही श्रवणप्रिय बनकर ध्वनित होती है। बाढ़ आते ही उसे ज्ञान हो जाता है नदी कितना बालू लायी होगी, कितनी मिट्टी खेतों तक पहुँचायी होगी। कभी–कभी जब बाढ़ अपना रौद्र रुप लेकर आती और खेतों में ज्यादा समय तक जल जमाव हो जाता तब नुकसान अवश्य होता था। पर ऐसा कम ही होता क्योंकि इस नदी की सतह गंगा नदी से ऊँची थी। उसने अपने जीवन में नदी का भयानक रुप सिर्फ एक बार देखा था। कहीं दूर एक बड़ी नदी का तटबंध टूटा और पानी से यह नदी लबालब हो गई थी। पानी और आया तो इस नदी के तटबंध से ऊपर होकर कई दिनों तक बहता रहा। पूरा कृषि क्षेत्र जलमग्न हो गया था। उन दिनों गंगा भी भरी हुई थी। पानी निकलने में दस दिन लग गये थे। अधिकांश धान सड़–गल गये। वाबजूद इसके कुछ न कुछ धान हो ही गया था ।

हबीब मियाँ नवाज़ी था। पहली नमाज़ घर में अदा करके वह खेतों की ओर चला आता था। दिन के वक्त कभी खेत के पानी से, तो कभी नदी के पानी से वुजु करता। कभी आम पेड़ के नीचे तो कभी किसी मेड़ पर या फिर पाकड़ के नीचे नमाज़ पढ़ लेता। ऐसे नमाज़ उसे ज्यादा सुकून देते थे। प्रकृति की रक्षा के लिये वह प्राय: खुदा का शुक्रिया अदा करता। समय निकाल कर दिन का भोजन करने घर जाता और जल्दी ही वापस आता। पुन: अँधेरा होने के पश्चात् घर लौटता। उसके दिन बड़े आराम से बीत रहे थे। पूरा परिवार खुशहाल था। नदी का पानी खेतों तक मछलियाँ लेकर आता था। हबीब मछलियाँ पकड़ता। मछली–भात उसके पूरे परिवार को पसंद था। वह खुशहाल जिन्दगी बसर कर रहा था ।

गाँव के पढ़े–लिखे, नौकरी पेशा लोगों का पलायन गाँव से शहर की ओर होने के कारण शहरों का विकास जोरों से प्रारंभ हुआ। सुख–सुविधा पाने के लिये लोग शहर में बसने लगे। नये–नये मकानों को बनाने के लिये बालू की जरुरत होने लगी। चूँकि यह नदी शहर के करीब थी इसलिये जहाँ से बालू उठाकर ट्रक–ट्रैक्टरों द्वारा शहर में बेचने का व्यापार जोर–शोर से प्रारंभ हुआ। पहले भी बालू शहर तक ले जाया ताजा था परन्तु तब ऐसी मारामारी नहीं थी। जितना उठाया जाता था उतना अगली बाढ़ में आ जाता। अब ज्यादा बालू उठाया जा रहा है और आमदनी पहले जैसी थी। परिमाणस्वरुप नदी खाली होती रही। उसकी गइराई बढ़ती रही। बरसात में नदी का जल–स्तर पहले की अपेक्षा नीचे होने लगा। एक वर्ष के अंतराल में ही नदी से इतना बालू उठ गया कि हबीब के खेंतों तक पानी पहुँचने में कठिनाई होने लगी। धान–पौद का जरुरी विकास अवरुद्ध हो गया। सिर्फ वर्षा के पानी से फसल उगाना संभव नहीं था। उसके खेतों का तल सबसे ऊँचा था। इसलिये सबसे पहले परेशानी उसी के पास आई। खरीफ फसल की उपज घटने लगी। खेतों में नमी की कमी हुई तो रबी के फसलों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। शुरुआती दौर में कूड़, ढोकला, करींग, सैन (नदी, तालाब और कुँआ के खेतों तक पानी पहुँचाने के पुराने साधन) आदि का सहारा लेना पड़ा। परन्तु उससे सिंचाई पूरी नहीं हो पाती। अंतत: उसने जमीन का एक छोटा टुकड़ा बेचा और डीजल से जलनेवाला मोटर–पंप ले आया। नदी की गहराई से पानी खींचकर खेतों तक पहुँचाता रहा। डीजल की कीमत लगातार बढ़ रही थी। खेतों के बाढ़ द्वारा आनेवाली मिट्टी

नहीं आई तो खाद डालने की नौबत आ गई। खाद की कीमत भी आसमान छू रही थी। फसल उगाने में लगातार घाटा होता रहा फलस्वरुप हबीब कर्ज में डूबने लगा।

तीन वर्ष बीतते–बीतते हबीब का परिवार भुखमरी के कागार पर आ खड़ा हुआ। कर्ज बढ़ता रहा। कई–कई शाम भूखे रहने की नौबत आ गई। चिंताएँ तेजी से बढ़ीं तो उम्र ने उसके स्वास्थ्य पर लंबी छलांग दिखाई। पचास वर्ष का हबीब सत्तर का बूढ़ा दिखने लगा। चेहरे पर झुर्रियों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया। पेट ने जब भूख बरदाश्त करने से इनकार किया तो खेत बेचने की नौबत आ गई। समय के अंतराल में भूख ने धीरे–धीरे उसके खेतों को निगलना शुरु किया। जल्दी ही एक समय ऐसा आ गया जब उसके पास घर के अलावे ऐसा कुछ नहीं बचा जिसे बेचकर एक जून की भी रोटी की व्यवस्था कर सके। आर्थिक विपन्नता ने एक तरफ सफीक की पढ़ाई बंद कर दी दूसरी तरफ हबीब की मन:स्थिति बिगड़ती रही।

शहरी विकास के लिये नदियों से बालू लगातार उठाया जा रहा था। उसका प्रभाव हबीब के खेतों से नीचे के खेतों पर भी पड़ा। शाहिद अंसारी, फकीर अली, गोरेलाल ओझा, फेकू यादव आदि के खेतों में पानी चढ़ना बंद हो गया। उनलोगों पर भी हबीब जैसी आफत आई। इसी बीच वैज्ञानिकों ने कई नदियों के साथ इस नदी के बालू को जैसे ही अति श्रेष्ठ घोषित किया वैसे ही बिना किसी मानक के नदी की कोख टुकड़े–टुकड़े में संवेदकों के हाथ बेच दी गई। लालच में संवेदनशीलता संवेदनहीनता की सेज पर लेटकर पंगु हो गई। बालू के भाव तेज होते गए। घर बनाने के अलावे सड़क निर्माण में भी बालू का प्रयोग हो रहा था। नदी से बालू खुरच–खुरचकर दूसरे शहरों तक भी भेजने का व्यापार होने लगा। संवेदकों के साथ किसानों के खून–खराबे भी हुए। गाँववाले के जान–मालों का नुकसान हुआ पर किसान हर बार कमजोर साबित हुए। सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक जागरण के लिये आवाजें उठाई गई, पर किसी ने नहीं सुनी। वह नक्कारखाने में तूती की आवाज बन कर रह गई।

नदी गहरी हो गई। उसका जल–स्तर पहले की अपेक्षा छ: फीट नीचे हो गया। पूरा कृषि क्षेत्र नष्ट हो गया। किसान अपनी बरबादी का तमाशा देखते रह गये। मजबूर किसानों की जमीन घात लगाकर बैठे बड़े–बड़े बिल्डरों के हाथ आने–पौने दामों में बिकती गई। कुछ ही दिनों के बाद अखबारों में विज्ञापन आने लगे 'मुख्य शहर के करीब, शांत वातावरण में, स्वीमिंग पुल, लॉन, केंटिन, पार्किंग, क्लब, युक्त सुसज्जित, सुन्दर फ्लैटों की अग्रिम बुकिंग करायें। विज्ञापनों में बहुमुंजिले फ्लैटों के मल्टी कलर फोटो होते थे। मध्यम वर्गीय किसान सीमांत किसान बन गये। जो पहले से सीमांत किसान थे वे मजदूरों में तब्दील होकर नदी का बालू उठाने लगे। हबीब की खेतिहर जमीन पहले ही बिक चुकी थी। घर की जमीन बचाने के लिये उसका बेटा सफीक नदी में मजदूरी कर रहा था। कई किसानों ने आत्महत्या कर ली थी। यह सब हबीब के दिमाग को बार–बार आघात पहुँचा रहा था। जब–जब बालू–गाड़ी की घरघराहट हबीब के कानों में घुसती तब–तब उसे महसूस होता कि कोई गर्म लाल सरिया उसके मुँह, आँख, नाक, कान आदि खुले अंगों में घुसेड़ता जा रहा है। सफीक नदी में बालू उठाने की मजदूरी करने जाता तो उसे महसूस होता कि बेटा उसकी छाती पर बैठकर मूँग दल रहा है। उसने सफीक को एक बार कहा था ''बालू उठाने को काम बंद करो''।

तब सफीक ने देर तक उसका चेहरा देखने के बाद पूछा ''किसे–किसे आप मना करेंगे?'' फिर कहा था ''जब हमारा खेत की बिक गया तब हमें क्या जरुरत है नदी को बचाने की। पेट भरने के लिये हम नदी का बालू उठावें या शहरों में मजदूरी करें, क्या फर्क पड़ता है?''

अन्तत: नदी की कोख खाली हो गई। एक कुदाल बालू नहीं रहा उसके पेट में। बदहवास–सी खड़ी नदी अपनी दुर्दशा देखती रही। प्रकृति के साथ बाजीगरी करने का अद्भूत खेल हुआ। बालू खत्म होते ही नदी से मिट्टी उठाकर शहर की नीची जमीन भरी जाने लगीं। यह सब देख–देखकर हबीब का मानसिक संतुलन स्थिर नहीं रहता था। जब–जब वह ज्यादा परेशान होता, तब–तब सोचता 'अपने स्वार्थ के लिये मनुष्य ने भविष्य की चिंता किये बिना कुदरत के साथ हमेशा खिलवाड़ किया है।'' वह सोचता 'मिट्टी उठाते–उठाते इन नदियों को बड़े–बड़े गड्ढ़ों में तब्दील हो जाना है।

अपनी सोचों में घिरा हबीब लाठी का सहारा लिये धीरे से नदी की बहती धारा के पास आ गया। हर डेग पर अपने मन में उपजे सवालों का हल खोजता रहा, जिसे वह ढूंढ नहीं पाया। बहती धारा के पास जाकर उसने नदी से पूछा ''तू ही बता मैं क्या करूँ?...... झुगबा, अब्दुल्ला, पुनमा, कमरू, कमाल या अखला की तरह आत्महत्या कर लूँ?...... तुम्हारी जलधारा में कूद कर अपने प्राण दे दूँ?

नदी चुप थी

मिट्टी पर बहती नदी की 'कल–कल' ध्वनि बंद हो गई थी। वह गूंगी बनी भागती जा रही थी। हबीब ने फिर उसी प्रश्न को दुहराया और नदी को बताया ''डीजल महंगा। खाद महंगे। सरकार उदासीन। वह सुनती ही नहीं। आजादी के बाद किसान न पले, न बढ़े, उलटे सिकुड़ते गये।''

अचानक वह जोर–जोर से चिल्लाने लगा ''कोई सुनता नहीं।..... कोई देखता नहीं।... कोई समझता नहीं।... किसान कितना धैर्य रखे?... कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि हमारे देश की खेती योग्य जमीन खत्म हो जायेगी?... किसानों का कोई वजूद ही नहीं रहेगा...? ... समय के अंतराल में छोटी–छोटी नदियाँ गुम हो जायेंगी?''

शरीर कमजोर होने के कारण उसकी साँस तेज हो गई थी। बावजूद इसके उसने कहा '' ...तुम्हें ही बताना होगा कि मैं क्या करूं?''

चुपचाप नदी बहती रही।
उसने नदी की धारा पर लाठी पटकी 'छपाक...।'
नदी को धमकाया ''जबतक तुम मुझे जवाब नहीं दोगी तब तक मैं तुम्हें पीटता रहूँगा।''
'छपाक...छपाक...छपाक...'

गजल

हम लोग अपनी राह की...

शायर अशोक मिजाज़
सागर, मध्य प्रदेश

हम लोग अपनी राह की दीवार हो गए
इक दूसरे के वास्ते तलवार हो गये

अब तो बुलंद और ज़रा हौसला करो
पत्थर जो मील के थे वो दीवार हो गए

तूफ़ां में हमको छोड़ के जाने का शुक्रिया
अब अपने हाथ पाँव ही पतवार हो गए

घर को गिराने वाले सियासी मिज़ाज थे
ग़म में शरीक हो के वो ग़म ख़्वार हो गए

परदे की बात परदे पे खुल कर जो आ गयी
बच्चे समय से पहले समझदार हो गए

कलयुग का दौर सच है मशीनों का दौर है
इंसान जिनके सामने बेकार हो गए

इतनी ज़रा सी बात पे हैरान है 'मिज़ाज'
काग़ज़ के फूल कैसे कहमदार हो गए

आलेख

सुमित्रानंन्दन पंत
के काव्य में बिम्ब विधान

डॉ0 अनुराधा दूबे
सागर, मध्य प्रदेश
मो0–9484062022

'बिम्ब' अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का हिन्दी रूपान्तर है।हिंदी भाषा में 'बिम्ब' की विशेष चर्चा पिछले कुछ दशकों से होने लगी है। किंतु पश्चिमी काव्यशास्त्र में बिम्बवाद की प्रतिष्ठा बीसवीं सदी के प्रारम्भ की भाषागत घटना मानी जाती है।डॉ0 नागेन्द्र के शब्दों में ''हिंदी में बिम्ब शब्द का प्रयोग संस्कृत के माध्यम से सर्वथा नवीन नहीं है, किंतु 'हिंदी काव्य' में यह नवीन ही है। शाब्दिक दृष्टि से इसे अंग्रेजी 'इमेज' का हिंदी रुपांतर माना जाता है।वस्तुतः काव्य बिम्ब एक प्रकार का भाव– गर्भित शब्द चित्र है। बिम्ब एंद्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक अथवा बौद्धिक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है।

बिम्ब शब्द का प्रयोग सामान्य रुप से 'छाया', 'प्रतिछाया' तथा अनुकृति के लिये किया जाता है, परंतु आज इसका प्रयोग व्यापक स्तर पर हो रहा है, मनोविज्ञान में इसे मानसिक पुनर्निर्माण के अर्थ में लिया जाता है। 'बिम्ब' चेतन स्मृतियाँ है जो विचारों की मौलिक उत्तेजना के अभाव में उस विचार को सम्पूर्ण रूप में या आंशिक रुप में प्रस्तुत करती हैं। अंग्रेजी के प्रामाणिक कोशों के अनुसार 'इमेज' के अर्थ हैं –

1 .किसी पदार्थ का मानचित्र या मानसी प्रतिकृति।

2. कल्पना अथवा स्मृति में उपस्थित चित्र अथवा प्रतिकृति जिसका चाक्षुस होना अनिवार्य नहीं है।

3 .किसी व्यक्ति या पदार्थ की प्रतिकृति।

4 .मूर्त्त और दृश्य प्रत्यांकन।

5. एक पदार्थ के लिये किसी ऐसे मूर्त्त अथवा अमूर्त पदार्थ का प्रयोग जो उसके अत्यधिक समान हो अथवा उसे व्यंजित करता हो जैस 'मृत्यु' के लिये 'निद्रा' का प्रयोग।

6 .मनोविज्ञान में 'इमेज' से अभिप्राय किसी ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव की स्मृति से है, जिसका परवर्ति अनुभव के द्वारा रुपांतर हो जाता है और जिसमें अंतर्मनोवैज्ञानिक तथा बहिर्मनोवैज्ञानिक उद्दीपन द्वारा उदबुद्ध बौद्धिक एवं रागात्मक तत्व अंतर्भुक्त रहते हैं।वह संग्राहक यंत्र पर अंकित उद्दीपक पदार्थ की प्रतिच्छवि का पर्याय है।

7 .इमेज से अभिप्राय है, ऐसी स्मृति का जो मूल उद्दीपन की अनुपस्थिति में किसी अनुभव का समग्र अथवा अंश रुप में पुनरुत्पादन करती है।

पंत काव्य में बिम्ब और अर्थ –

पंत के लिए प्रत्येक शब्द मूर्त्त रुप रहता है।अतः कविताओं में एक ही शब्द के विविध पर्यायवाचियों के भिन्न–भिन्न चित्रोपम प्रयोग मिलते हैं।उनकी चक्षुरिंद्रिया जितनी अंतः प्रवेशिनी है, श्रोत्रेंद्रियाँ भी उतनी ही सूक्ष्मग्राहिणी हैं। कानों के माध्यम शब्द सुनते ही उसके अनुरुप चित्र आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। काव्यभाषा के लिए इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अनिवार्य होता है। यह बात पल्लव के 'प्रवेश' में पंत ने स्वयं स्वीकार की है।– ''कविता की भाषा के लिए चित्रभाषा की आपश्यकता पड़ती है उसके, शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हो, सेव की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भावों को अपनी ही ध्वनि में आखों के सामने चित्रित कर सके।'' अपने दृष्टिकोण के ठीक अनुरुप भाषा ही उन्होंने अपने काव्य में प्रयुक्त की है।

पंत की बिम्ब योजना पर विचार करते समय प्रधानतया उनमें छायावादी काव्य को ही आधार बनाया गया है। छायावादी काव्य में प्रकृति की भूमिका है। पंत ने प्रकृति के प्रांगण से प्रायः कोमल पुष्पों का ही चयन किया है। बादल, कुमुदलता, फूल, तरंग, उषा, पल्लव, पावस–ऋतु, छाया आदि तथा उधर मानवेतर प्रकृति के विहग, वासुकि, कृमि, उलूम, गजादीप आदि का विभिन्न उपमान बिम्ब रचना के आधार बने हैं। मानव प्रकृति का उपयोग भी यथास्थान हुआ है।जैसे प्रेयसी की सरलता और भोलापन मुर्तित करने के लिए 'विचारों में बच्चों की साँस, कहा है। कहीं–कहीं अंतर्कथाओं के सहारे गुढ़ भाव की व्यंजना की गयी है। जैसे 'छाया' को परित्यक्ता दमयंती के सदृश बताने में तरु तले लेटी छाया की असहायता रुपायति हो उठी है। निष्कर्षतः पंत ने जीवन के विविध पक्षों से बिम्ब संसाधनों का चुन–चुन कर चयन

किया है।

ऐंद्रिय बोध के आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण –

ऐंद्रिय बोध बिम्बों का अनिवार्य अंग है। मौलिक रुप में बिम्बों से प्राप्त अनुभव ऐंद्रिय सम्वेदना से उद्भूत अनुभवों की ही कोटि के होते हैं। लीविस के शब्दों में–'प्रत्येक काव्यात्मक बिम्ब चाहे वह किसी प्रकार का क्यों न हो, ऐंद्रिक तत्वों से संवलित रहता है।'' 10 साथ ही प्रत्येक बिम्ब चाहे वह किसी भी ऐंद्रिय का विषय क्यों न हो कुछ अंशों में चाक्षुष गुण का मिश्रण अवश्य रहता है–

(क) स्थूल सम्वेदनात्मक बिम्ब

(ख) सूक्ष्म सम्वेदनात्मक बिम्ब

(क) स्थूल सम्वेदनात्मक बिम्ब : मानव मन के बोध और अनुकृति का आधार पाँच ज्ञानेंद्रियां होती हैं जिनके आधार पर बिम्बों के पाँच वर्ग किये जा सकते हैं –

(1) दृश्य या चाक्षुष बिम्ब

(2) श्रव्य का नादात्मक बिम्ब

(3) स्पृश्य बिम्ब

(4) गंध या घ्राण विषयक बिम्ब

(5) मिश्रित संश्लिष्ट बिम्ब।

(ख) सूक्ष्म सम्वेद्नात्मक बिम्ब – भारतीय दर्शन की छठी सूक्ष्मेंद्रिय के प्रति सम्वेदित होने वाले बिम्ब सूक्ष्म सम्वेदनात्मक बिम्ब के अंतर्गत आते हैं।

छायावाद के प्रमुख प्रहरी सुमित्रानंदन पंत ने भी प्रेम, वेदना, करुणा आदि भावों का जो मूर्तिकरण किया उसमें नारी, प्रकृति तथा पुरुष आदि की श्रेणी के उपादनों से सहायता ली गयी है तथा नारी, प्रकृति आदि मूर्त विषयों को वेदना, करुणा आदि भावनाओं तथा कवि की रुप, रस, गंध, स्पर्श आदि ऐंद्रिय सम्वेदनाओं से समन्वित करके चित्रित किया गया हैं खड़ी बोली में काव्य रचना करते समय पंत ने भी शब्दों में रुप – रस – गंध भरने का प्रयास किया है और स्वयं कहा भी है – ''उसमें हमने अपने प्राणों का संगीत अभी नहीं भर; उसके शब्द हमारे हृदय के मधु से सिक्त होकर अभी सरस नहीं हुए, वे केवल नाम मात्र हैं, उनमें हमें रुप – रस – गंध भरना होगा।''11

(क) स्थूल सम्वेदनात्मक बिम्ब –

(1) चाक्षुष बिम्ब और अर्थ– चाक्षुष नेत्रमर्धी होते हैं, जिनकी संयोजना विशेषतः रुप– चित्रण के लिए की जाती है। पदार्थ–विशेष के सम्पर्क में आने पर न केवल उसके विविध रुप – खंड नेत्रों में प्रतिच्छायित होने लगते हैं, अपितु कवि की सूक्ष्म अनुभूति का सम्बल पाकर वे अतिशय मूर्त हो उठते हैं। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में–''यही कारण है कि ऐसे प्रत्येक अनुभव के लिए किसी भी ऐंद्रिय का सीधा सन्निकर्ष होता है। 'प्रत्यक्ष' विशेषण का प्रयोग किया जाता है और जीवन तथा काव्य में दृश्य बिम्बों का प्रयोग सर्वाधिक होता है, इसीलिए अलंकार तंत्र में भी सादृश्य का इतना अधिक महत्व रहा है।

चाक्षुष बिम्ब दो प्रकार के होते हैं– स्थिर और गत्मात्समक। स्थिर चाक्षुष बिम्ब का एक बहुत अच्छा उदाहरण पंत की 'छाया' कविता है, जिसमें कवि ने छाया के सूक्ष्म और अनाविल सौंदर्य का परिचय देने और पृथ्वी पर उसकी व्याप्ति को प्रदर्शित करने के लिए निम्नलिखित पंक्तियों के बिम्ब अत्यंत समर्थ और सार्थक हैं –

''कौन, कौन तुम परिहित वसना म्लान मना, भू पतिता सी,
वात हता विचिछन्न लता सी, रति श्रांत व्रज वनिता सी?

स्थिर के साथ चाक्षुष बिम्ब गद्यात्मक भी होते हैं। 'नौका बिहार' कविता में नदी में चलती हुई तारणी की कोमल–गतिशीलता और थिरकन के लिए कवि हंसनी का बिम्ब प्रस्तुत करता है–

''मृदु मंद–मंद मंथर–मंथर,
लघु तरणि हंसनि–सी सुंदर
तिर रही खोल पालों के पर।

(2) संश्लिष्ट बिम्ब और अर्थ– जहाँ पत का कवि सांगोपांग एवं पूर्ण सामग्री द्वारा एक ऐसे संश्लिष्ट शब्द चित्र का निर्माण करता है, जिसे पढ़ते ही पाठकों के हृदय–पट पर एक पूर्ण चित्र अंकित हो जाता है। अपने काव्य में कितने ही स्थलों पर पंत ने अत्यंत सरस, सजीव एवं संश्लिष्ट बिम्बों का विधान किया है।

''मृदु मंद–मंद मंथर लघु तरणि हंसनि–सी सुंदर
तिर रही खोल पालों के पर
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिम्बित हो रजत–पुलिन निर्भर
दुहरे उँचे लगते क्षण भर''

''लहरों के घुँघट से झुक–झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक मुख
दिखलाता मुग्ध–सा रुक–रुक।
माँ के उर पर शिशु–सा, समीप सोया धारा में एक दीवप,
उर्मिल प्रवाल को कर प्रतीप।''

पाल खोले हुए पानी पर तरती हुई नौका का सम्पूर्ण चित्र मानस नेत्रों में साकार हो उठता है। तैरती हुई संहनी के लिए 'मृदु–मंद–मंद, मंथर' आदि विशेषण तैरने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को जीवंत एवं स्पष्ट करते हैं। 'लहरों का घुँघट' दुल्हिन के रुप को अंकित करता है। नदी की धारा के मध्य स्थित दीप का माँ के उर पर सुप्त .... में उपमा निर्मित बिम्ब के आश्रय से चित्रण सम्पूर्ण चित्र को चेतना से पूर्णतः साकार कर देता है।

(3) श्रावणिक बिम्ब और अर्थ– श्रावणिक बिम्ब वह अनुभूति है जिसका सीधा संबंध कर्णेंदिय से रहता है।

श्रावणिक बिम्ब स्पष्टत: शब्द संयोजित प्रकृत ध्वनि चित्र ही होते हैं। श्रव्य बिम्ब स्पष्टत: शब्द संयोजित प्रकृति ध्वनि चित्र ही होते हैं। श्रव्य बिम्ब भाव को संवेध बनाते हैं उनका प्रभाव मानव–हृदय पर उसी प्रकार पड़ता है जैसे बीन की आवाज पर सर्प का नृत्य करने के लिए विभोर हो उठना।

पंत ने ऐसे ध्वनि सौंदर्यपूर्ण नादात्मक बिम्बों की सर्जना की जिसमें ध्वनि–चित्र अथवा नाद–चित्र मौजूद हैं, पपीहों की पीन पुकार, झींगुरों की झंकार, कोकिल की कूक, भौंरों का गुँजार, लहरों का लचकीला गान, मेघ की गम्भीर गर्जन आदि ध्वनियाँ हमारे संवेदनशील हृदय को स्पर्श करके अपना प्रभाव छोड़ जाती है। पंत ने ध्वन्यात्मक शब्दों का सफल प्रयोग करके भावों को रसमय बनाने के साथ–साथ नाद–व्यंजना से बिम्बों का निर्माण भी किया है–

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर झर;
झींगरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु गंभीर घहर
बिंदुओं की छनती छनकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर

इसका उदाहरण नें नाद व्यंजना के ब्याज से पंत ने पावस ऋतु को सजीव कर दिया है। पंत ने शाम के वातावरण को चिड़ियाँ की टी–वी–टी, टुट–टुट ध्वनियाँ से अंकित किया है। सांध्यकालीन बेला में जब बहुत सी चिड़ियाँ बासों के झुरमुट में एक ही साथ चहकने लगती है तो उनके सम्मिलित स्वर ऐसी ही ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

इसके अतिरिक्त कठोर और पुरुष ध्वनियों के बिम्ब भी 'परिवर्तन', 'बादल' आिदि कविताबों में मिल जायेंगे किंतु पंत ने अधिकतर मधुर श्रोत बिम्बों को ही अंकित किया है।

(4) घ्राण विषयी बिम्ब और अर्थ– गंध विषयक अप्रस्तुत–योजना के माध्यम से वस्तु की गंधानुभूति को प्रबुद्ध करके उसके समग्र प्रभाव को मूर्तिवत करने की दृष्टि से भी छायावाद के अनेक सुंदर बिम्बों को निर्माण किया गया है।

घ्राण–संवेदना के धरातल पर गंध के दो सीमांत हैं– सुगंध और दुर्गंध। सुगंध के बिम्बों का ही अधिकांशत: प्रयोग हुआ है। पंत काव्य में घ्राण विषयी बिम्ब विरल ही हैं। कहीं–कहीं गंध रुपों के प्रतीक फूल घ्रातव्य बिम्ब के संकेत के लिए मिल जाते है।, उदाहरणार्थ–

(1) 'भीनी चम्पा' नव भावों की।
(2) 'तप्त कनक द्युति, सहज चंदन सी वासित।
(3) 'गंध पवन में धरती भीनी साँस ले रही।

इसमें 'चंदन वासित' घ्रातव्य बिम्ब द्वारा 'कनक द्युति' वाली काँतिपूर्ण देह की सुगंधि को ही संवेद्द न बनाकर उसके अद्‌भूत सौन्दर्य एवं शीतलता के सम्पूर्ण प्रभाव को अनुभूतिगम्य बनाया गया है और 'गंध पवन', 'भीनी चम्पा', 'भीनी साँस' ने तो सम्पूर्ण वातावरण को ही सुगंधि से भास्वर कर दिया है।

(5) मिश्रित संश्लिष्ट बिम्ब और अर्थ– मिश्रित संश्लिष्ट बिम्ब का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''स्वपनों के तट संतरंग कुसुमित,
कुसुमों पर मधु भृंग गुंजरित,
स्वर्ण गुंजरण सुन उर मोहित
शत सुर वीणाओं के स्वर सी।''

इन मिश्रित संश्लिष्ट बिम्ब के उद्धरण की प्रथम दो पंक्तियों में 'स्वप्नों के तट पर कुसुमों के खिलने' और उन पर भौंरों के बैठकर गुंजार करने का चाक्षुष बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। तीसरी, चौथी पंक्तियों में 'शर सुर वीणाओं के स्वर सी' उन भौरों की गुंजार को सुनकर हृदय के मोहित होने में श्रावणिक बिम्ब की सृष्टि हुई है। ऐसे बिम्ब संयुक्त रुप से प्रभावित करते हैं।

(ख) सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब–

(1) सांस्कृतिक बिम्ब और अर्थ– सांस्कृतिक बिम्ब के अंतर्गत वे सभी बिम्ब आते हैं जो पुराण, इतिहास, दर्शन, शासन, कला, साहित्य आदि से गृहित किये गए हैं। इसके द्वारा कवि अपने काव्य की शोभा बढ़ाने के साथ ही सांस्कृतिक वातावरण की सृष्टि करके पाठकों को उनकी सांस्कृतिक से अवगत कराता है। पंत ने सांस्कृतिक बिम्बों के आधार पर अनेक मनोभावों के सजीव चित्र अंकित किये हैं–

''वयस भार से झुका धनुष सा
पृष्ठ वंश : रेखांकित आनन,
दृष्टि क्षुधा निद्रा भी क्रमशः
शिथिल हुई अब, मंद स्मृति श्रवण।''

इस उदाहरण में धनुष का उपमान बनाकर एक वृद्ध का शब्द बिम्ब अंकित किया गया है। धनुष एक सांस्कृतिक उपकरण है। आयु के बोझ से वृद्ध का शरीर धनुष की भाँति झुक गया है। मुख पर वार्धक्य–सूचक अनगिनत झुरियाँ पड़ी हुई हैं, उसे देखकर ऐसा लगता है मानों उसे महत्व देने के लिए बहुत सी रेखाएँ मुख पर खींच दी गई है, वृद्धावस्था के कारण उसकी सारी

इंद्रियाँ शिथिल पड़ गई हैं। मात्र 'धनुष' शब्द वृद्धका चित्र खींच देता है।

''मुझको प्रसन्न मन देख धूप सकुचा–कुम्हला
बोली 'विद! मुझे जाना!– वह देखे
किरणें अस्ताचल पर कंचन पालकी लिए
मुझको ठहरी हैं क्षितिज रेख का सेतु बाँध।''

'पालकी' भारत का एक अति विशिष्ट वाहन हैं, जिसका उपयोग विशेषत: स्त्रियों के लिए होता रहा है। पर्दे और घुँघट वाली स्त्रियाँ घर से दूर यदि कहीं जाती थीं तो पालकी में ही बैठकर। सूर्यास्त की बेला में सूर्य क्षितिज पर सुनहरी आभा को बिखेर कर विदा ले रहा है। सूक्ष्म कल्पना द्वारा कवि ने जाती हुई धूप को सुसंस्कृत परिवार की नारी का रुप दिया है और क्षितिज पर व्याप्त स्वर्णिम छाया को पालकी बनाया है, जिसके ढोने का कार्य किरणें करती हैं। इस प्रकार डुबते हुए सूर्य और उसके मुख पर फैली सुनहली आभा को देखकर पालकी में बैठी (चार पुरुषों द्वारा ढोई जाती हुई) किसी लजीली नारी का चित्र स्पष्ट उतर आया है। नेत्रों के समझ पालकी और ढोने वालों का चित्र बनता है किंतु मन में चित्र बनता है पालकी में बैठी हुई लजीली नारी का। धूप इतनी लजीली बहू है कि उसकी पालकी किरणों के रुप में स्त्रियाँ ढोती है पुरुष नहीं। सूर्य की स्वर्णिम आभा और पालकी में कवि ने रुप–साम्य रखा है।

(2) प्राकृतिक पदार्थ सम्बंधि बिम्ब और अर्थ– प्राकृतिक पदार्थ सम्बंधि बिम्ब के अंतर्गत वे सभी बिम्ब आते है।, जो प्रकृति से गृहीत होते हैं, जिनका निर्माण वनस्पति, पर्वत, नदी, आकाश, जीव–जंतु, जल, खनिज, काल ऋतु आदि के द्वारा होता है। प्रकृति के सुकुमार कवि पंत ने प्राकृतिक पदार्थो के द्वारा बड़े ही सुंदर एवं सजीव बिम्बों का निर्माण किया है। 'ग्राम्या' की चार पंक्तियों में कवि ने चार बिम्ब प्रस्तुत किए हैं–

''सिमाटा पंख सांझ की लाली,
जा बैठी अब तक शिखरों पर
ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख,
करते स्वर्णिम निर्झर
ज्योति स्तम्भ–सा धँस सरिता में,
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल''
वृहद जिह्वा विश्लथ केंचुल–सा,
लगता चितकबरा गंगा–जल।

उपर्युक्त उदाहरण की प्रथम पंक्ति में सांझ की लाली का मानवीकरण करके उसे पक्षी का रुप दे दिया गया है। सूर्यास्त के समय संध्या की लालिमा तरु शिखरों पर ही दिखाई देती है, कवि उसी की कल्पना करता है, जैसे कोई पक्षी पंख समेट कर तरु–शिखरों पर जा बैठा हो। दूसरी पंक्ति में निर्झर का चित्र है, जिसका जल डुबते हुए सुर्य की लालिमा से ताम्रवर्ण–सा प्रतीत हो रहा है। तीसरी पंक्ति में क्षितिज के पार डुबता सूर्य ज्योतिस्तम्भ–सा प्रतीत होता है और चौथी पंक्ति में गंगा के जल का चित्र है जो अनेक प्रतिबिम्बों के पड़ने के कारण केंचुल–सा चितकबरा मालूम होता है।

(3) जीवन सम्बंधी बिम्ब और अर्थ– इसके अंतर्गत से सभी बिम्ब आ जाते हैं, जो सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और व्यावसायिक जीवन से गृहीत हैं। इसके द्वारा कवि मानव जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। 'ग्राम्या' में ऐसे अनेक बिम्ब हैं, जो सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन से सम्बंधित हैं।

प्रकृति के चित्रपट पर वर्तमान राजनीति के कारण उठे हुए पराभव के बादलों का बिम्ब देखिए–

विश्व क्षितिज में घिरे पराभव के हैं मेघ भयंकर।
नवयुग का सूचक है निश्चय य ताण्डव प्रलयंका ।।

वर्तमान राजनीतिक उथल–पुथल और संघर्ष के पश्चात नवयुग का प्रभात शांति का संदेश लेकर पृथ्वी पर अवतरित होगा। क्षितिज में प्रलयंकर मेंघों के घिरने का चित्र भंयकर युद्ध का स्पष्ट बिम्ब सामने प्रस्तुत कर देता है। राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न भीषण और तत्पश्चात शांति की स्थापना का छायाचित्र कवि ने कलात्मक ढंग से लक्षण के आधार पर चित्रित किया है।

(4) आर्थिक जीवन सम्बंधि बिम्ब और अर्थ– इस प्रकार के बिम्बों में मानव के आर्थिक जीवन सम्बंधि चित्र अंकित किये जाते हैं। गाँवों की आर्थिक दशा और शोचनीय परिस्थितियों के चित्र द्रष्टव्य हैं–

जहाँ दैन्य जर्जर असंख्य जन, पशु–जघन्य क्षण करते यापन
कीड़ों से रेंगते मनुज शिशु, जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन।
घर–घर के बिखरे पन्नों में नग्न, क्षुधार्त कहानी
जन मन के दयनीय भाव कर सकती प्रकट न वाणी।

असमय ग्राम्य की नारी में वृद्धावस्था के लक्षण दिखना उसकी आर्थिक विपन्नता का ही सूचक है। पंत ने ग्राम्य में एक ऐसी ही स्थिति का चित्र उकेरा है–

रे दो दिन का
उसका यौवन
सपना छिन का

रहता न स्मरण
दु:खों में पीस,
दुर्दिन में घीस
जर्जर हो जाता तन।
ढह जाता असमय यौवन घन।

उपर्युक्त पंक्तियों में दु:ख से पिसती हुई ऐसी ही ग्रामयुवती का चित्र अंकित किया गया है। पंत–काव्य में इन बिम्बोंके अतिरिक्त भी अनेक बिम्ब मिलते हैं। यथा–स्थूल संवेदनात्मक बिम्ब के अंतर्गत–स्पृश्य बिम्ब, आस्वाद बिम्ब तथा सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब के अंतर्गत स्मृति बिम्ब, उदात बिम्ब, प्रत्यक्ष बिम्ब, स्वप्न सम्बंधि बिम्ब, मानसिक बिम्ब, शब्द शक्ति सम्बंधि बिम्ब, प्रतीक सम्बंधि बिम्ब, व्यावसायिक बिम्ब आदि आते हैं।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि सुमित्रानंदन पंत के काव्य में सभी प्रकार के बिम्ब ढूँढ लेना कठिन कार्य नहीं है और न ही बिम्ब–योजना का वैविध्य किसी काव्य की उत्कृष्टता की कसौटी है। काव्य में बिम्बों की सफलता उनकी सजीवता, समृद्धि, औचित्य आदि गुणों पर निर्भर करती है। बिम्ब–योजना में 'नवीनता' का प्रश्न भी बड़ा महत्वपूर्ण है। यह सर्वविदित है कि अत्यधिक प्रयोग से बिम्ब घिस कर प्रभावहीन हो जाते हैं। कुशल कवि का कार्य है कि वह नए बिम्बों की रचना करें। चाहें सर्वथा नए उपमानों का आश्रय ले या फिर पुराने उपमानों का नव विन्यास करे। पंत ने दोनों प्रकार से नयी बिम्ब सृष्टि की है। तारे की कल्पना 'ऋषि' रुप में करना अथवा गंगा को 'तापस बाला' कहना प्रथम कोटि की सद्ता है तथा विधुर उर के उच्छवासों को कुसुम कहना द्वितीय प्रकार की नवीनता है।

हिंदी काव्य में छायावादी धारा बिम्बों की दृष्टि से विशिष्ट है और छायावादी कवियों में पंत इस दृष्टि से अग्रग्ण्य हैं नि:संदेह पंत सुंदर, सजीव और मार्मिक बिम्बों की नवीनता, व्यापकता और समृद्धि के कारण ही अपने काव्य–बिम्ब की योजना में इतने अधिक सफल हो पाये हैं। बिम्बों में प्रतिबिम्बित पंत के काव्य की यही विशेषता है।

कविता

आओ तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ

संयुक्ता गुप्ता
भागलपुर

आओ तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ
क्यों चुप तुम बैठे हो
सरस मधुमय की बेला में
तुम्हें मनाऊँ गीत सुनाऊँ
कर सुरभित और सुवासित
तेरे विकल उर को गीतों से
तिमिर मन को दमकाऊँ
अश्रु नयनों से न बात करो
तुम सुनो मैं गुनगुनाऊँ

आओ तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ
आलोकित पथ हो हर तेरा
छाया छलके छवि–किरण सी
मलयज की मलय बहार लिए
प्राणमयी मानवता उन्माद जगाऊँ

आओ तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ
क्षण–क्षण, पल–पल तुझे जगाऊँ
नव नूतन निधियाँ नभ से लाऊँ
मधु आशाओं के दीप जलाऊँ
आओ तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ ...... ।

आलेख

आधुनिक हिन्दी कविता में अभिव्यक्त
सांप्रदायिक सद्भावना

डॉ० शेख अब्दुल वहाब
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
इस्लामिया म० वि० वाणियम्बाड़ा, त० ना०

भारत विभिन्न धर्मों, संप्रदायों एवं विभिन्न भाषाओं का देश है। राष्ट्र कवि दिनकर ने कहा है कि 'भारत की एकता उसकी विविधताओं में छिपी हुई है।' स्पष्ट है कि यहाँ विभिन्न संस्कृति, धर्म, भाषा व संप्रदाय के लोग रहते हैं। इन विविधताओं के बीच 'भारतीय' होने का भाव हम सब को एक बनाये हुए है। संसार के सभी धर्म शांति व सद्भाव की शिक्षा देते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं। प्रेम और सत्य साधना के माध्यम से उस एक परमसत्ता या परमेश्वर को प्राप्त करने का मार्ग ही धर्म है।किसी भी धर्म में दूसरे धर्म के प्रति विरोध का भाव नहीं है। इसी को राष्ट्र कवि अल्लामा इकबाल ने अपने गीत में यों व्यक्त किया है।

''मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना
हिन्दी हैं हम, हिन्दी हैं हम वतन है
हिन्दोस्ताँ हमारा ।''

इन सबके होते हुए भारत में धर्म व संप्रदाय के नाम पर दंगे – फसाद होते रहते हैं। इनमें भारत की मूलभूत एकता का स्वर सांप्रदायिक सद्भावना कुंठित हो जाता है।देश के लिए, देश की एकता व अखंडता के लिए यह सांप्रदायिकता घातक सिद्ध हुई है। हो रही है। धार्मिक विसंगतियों और राजनीतिक दलों की स्वार्थपूर्ण राजनीति के कारण देश में आए दिन सांप्रदायिकता को कुप्रेरित करनेवाली घटनाएँ हो रही है।

आधुनिक कविता में सांप्रदायिक सद्भावना को उभारनेवाले अनेक संदर्भों को अभिव्यक्ति मिली है। कवि सामाजिक सजग प्राणी होने के कारण सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति तटस्थ नहीं रह सकता है।हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा की उद्भावना का यही कारण रहा। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्यों में राष्ट्रीय भावना और सांप्रदायिक सद्भावना को अभिव्यक्ति मिली है। 'अपना संसार' कविता में गुप्त जी ने संसार की कल्पना एक बड़े परिवार से करते हुए 'वसुधैवकुटुम्बकम्' हो अभिव्यक्ति प्रदान की है।कहा है कि ...

'रक्खे मनुष्यत्व ही मानव
सबसे समता का व्यवहार
ऐसा हो मेरा संसार'

इसी कविता में कवि सबको एक सूत्र में बाँधने की बात की है।

'भिन्न–भिन्न हों सब के कौशल
किन्तु विविध रत्नों से झलमल
एक सूत्र में एकाकार
ऐसा हो मेरा संसार।'

''भारत भारती'' में कवि ने देश के लिए सांप्रदायिकता को भुलाकर उसी भारतवासियों को कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने की आवश्यकता पर बल दिया है।

''क्या सांप्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो!
बनती नहीं क्या माला विविध सुमनों की कहो?''

उन्हौंने तो यह माना है कि ''हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान, परमपिता की सब संतान।''

भारत एक सांस्कृतिक–संगम–स्थली है जहाँ हिन्दू, जैन इस्लाम, बौद्ध, ईसाई आदि धार्मिक धाराओं का मिलन होता है। गुप्तजी के लिए जैसा कि ऊपर कहा गया है सभी भारतीय समान हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य को पाने के लिए सब को एकजुट होकर काम करने को कहा है। उन्हें संघ की शक्ति में विश्वास था। इस शक्ति से देश में संसार में परिवर्तन लाया जा सकता है।

''सिद्धराज'' काव्य में उनके यह विचार व्यक्त हुए।

''व्यक्ति कोई रहे चाहे जितना बड़ा
संघ में ही शक्ति है गति एक वही सब की।''

उनका मानवतावाद राष्ट्र से आगे बढ़कर ''वसुधैवकुटुम्बकम' को प्रकाशित करता है। 'वैतालिक' काव्य में ..... 'भारतीय मेरे बांधव

है घर है मेरा सारा देश
यह मेरे आत्मचरित ही है मेरा अंतिम संदेश।''

देश में सांप्रदायिक सद्‌भाव की व्याप्ति में गुप्त जी के ये विचार महत्वपूर्ण रहे हैं।

गांधी दर्शन से प्रभावित राष्ट्रवादी कवि सियारामशरण गुप्त हैं। अपना खंडकाव्य 'आत्मोत्सर्ग' में स्वतंत्रता सेनानी गणेशशंकर विद्यार्थी की जीवन गाथा गायी है। इसमें कवि ने हिन्दू, मुस्लिम मैत्री पर प्रकाश डाला है। सांप्रदायिक सद्‌भावना को उभारने में ये पंक्तियाँ सक्षम हैं।

''हिन्दू मुस्लिम दोनों ही
एक डाली के हैं दो फूल
और एक ही है दोनों का
बड़ा बनानेवाला मूल।''

इसके अतिरिक्त 'नोआखली में' काव्य में भी सांप्रदायिक सद्‌भाव के प्रसंग आए हैं।

रामायण पर आधारित 'साकेत' काव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने ऐसे समाज की कल्पना की है जिनमें सबजन समान हैं।

''एक तरु के विविध सुमनों से खिले
पौर जन रहते परस्पर हैं मिले।''

मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी आदि के पश्चात् गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित सोहनलाल द्विवेदी, नरेन्द्र शर्मा आदि की रचनाओं में भी सांप्रदायिक सद्‌भाव की अभिव्यक्ति हुई है। नरेन्द्र शर्मा अपनी रचना 'प्रतीक' में यह प्रश्न कर बैठते हैं कि–

''मैं हिन्दू तुम मुसलमान पर क्या दोनों इन्सान नहीं?''

कोमलकांत पदावली के कवि पंत ने अपनी कविताओं में मानवतावादी स्वर को उभारा है। जिनमें मानवता के निर्माण में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी जनों के परस्पर सहयोग की बात कही गयी है।

''मानव को चाहिए जहाँ मनुजोचित साधन!
क्यों न हो मानव मानव सभी परस्पर
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर।''

क्योंकि उनका विश्वास है कि ''मानव होने के नाते उर में भरता अपनापन'' (दो लड़के) राष्ट्रीयता से आपूरित उनकी कविता 'राष्ट्रगान' में कवि ने सांप्रदायिक सद्‌भाव को उभारकर मानवता के उदय की आशा व्यक्त की है।

''नव मानवता में जाति वर्ग होंगे सब क्षय
राष्ट्रों के युग वृत्तांश परिधि में जग की लय
जन आज अहिंसक होंगे कल स्नेही सहृदय
हिन्दू ईसाई मुसलमान मानव निश्चय।''

'ज्योत्स्ना' कविता में पंत का मानव जाति वर्ग राष्ट्र धर्म की सीमाओं से मुक्त केवल मानव है। वह देश काल की संकीर्णताओं से मुक्त हो उठा है। ज्ञान विज्ञान की विषमताओं के बीच अपना संतुलन मनुष्य स्थापित करता है।

''सर्व देश, सर्व काल
धर्म जाति वर्ण जाल,
हिलमिल सब हों विशाल,
एक हृदय, अगणित स्वर।''

हालावादी बच्चन ने हाला के माध्यम से सांप्रदायिक सद्‌भाव की व्याख्या की है।

''दोनों रहते एक नहीं जब
मस्जिद, मंदिर में जाते
वैर बढ़ाते मस्जिद मंदिर
मेल कराती मधुशाला''

कवि की मधुशाला धार्मिक संकीर्णताओं को तोड़कर सबका स्वागत करती है। एक अन्य स्थान पर बच्चन ने परम्परा को मधु कहते हुए परोक्ष रूप से हिन्दू, मुस्लिम एकता को स्वीकारकर सांप्रदायिक सद्‌भाव पर प्रकाश डाला है।

'परम्परा चीनी नहीं मधु है
वह ना तो हिन्दू है ना मुस्लिम''

निष्कर्षत: कह सकते है कि राष्ट्रीय काव्यधारा की रचनाओं में सांप्रदायिक सद्‌भाव पर प्रकाश डाला गया है। स्वतंत्रता संबंधी आंदोलनों के दौर में और तत्पश्चात् की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में हिन्दी में सांप्रदायिक सद्‌भावना के महत्त्व को रेखांकित करते हुए अनेक काव्य रचनाओं का सृजन हुआ है। आज के दौर में कवि इस सांप्रदायिकता की संकीर्णता से ऊपर उठकर मानव और मानवीय चेतना की बात करता है जिसके मूल में सांप्रदायिक सद्‌भावना निहित है। नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर डॉ0 जगदीश गुप्त ने कहा है–

''मैं मानता हूँ कि देश सबसे बड़ा है
हाँ सबसे बड़ा है देश
पर देश से भी बड़ी होती है
मनुष्यता!''

साहित्कार देश की एकता और लोकतंत्र की व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध सांप्रदायिकता के प्रति सतर्क रहता है। उसकी जागरुक प्रज्ञा समाज घाती तत्वों का विरोध करती है।गोपालदास नीरज की कविता में इस सांप्रदायिकता के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है।

''पूजा बनी अर्थ की सेवा
मजहब एक जनून हुआ
मंदिर मस्जिद के आंगन में
इंसानों का खून हुआ
झूठे प्रांतवाद ने बढ़कर यूँ भरमाया लोगों को
ईंटों का घर याद रहा हम दिल का ठिकाना भूल गये।
जाति पांति और वर्ग भेद का
हमने वो नक्शा खींचा
भाई के लोहु से भाई ने
अपना दामन सींचा।''
(चेतना के स्वर)

मैं अंत में स्वतंत्रता की प्रथम महिला सत्याग्रही कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान की कविता की पंक्तियाँ यहाँ उदृत करना चाहूँगा। इसमें सुभद्राजी अपनी संतान को उन सभी गुणों से पूर्ण देखती हैं जो मनुष्य मात्र के लिए आदर्श है और सांप्रदायिक विद्वेष को हमेशा के लिए मिटाया जा सकता है।

''मेरा मंदिर मेरी मस्जिद
काबा काशी यही मेरी।
मूजा पाठ ध्यान जप तप है
घट–घट वासी यह मेरी
प्रभु ईसा की क्षमाशीलता
नबी मुहम्मद का विश्वास
जीवन दया जिनवर गौतम की
आओ देखो इसके पास।''

आइए प्रार्थना करें हम सब मिलकर कि मनुष्य मनुष्य के बीच घृणा और विद्वेष की भावनाएँ समाप्त हो। सांप्रदायिक सद्भाव का विकास हो।

कविता

बेटी बचाओ

संजय वर्मा 'दृष्टि'
125, भगत सिंह मार्ग
मनावर, जिला–धार (म0प्र0)

बिदाई में भीगती हैं आँखें
बेटी हुई तब ख़ुशी से झरते आँसू
साँझ की पंछी की तरह लौट आते हैं आंसू
जब भ्रूण–हत्या हो तब फिर से गिरते आंसू ।

माँ किस–किस से करे गुहार
पीड़ायें मन की उभर के आई
मुस्कुराहट भी डरने लगी क्रूर लोगों से
कब लगेगा अंकुश ये माँ सोचती आई।

बिटियाँ आ सकेंगी दुनिया में
बिछाए रखे थे माँ ने पलक–पाँवड़े ये सोच कर
रो–रो कर बताती रही आँखें दुनिया को
क्या दुनिया में बेटियाँ का जनना है दुष्कर ।

अगर ऐसा ही है तो बेटियों के बिना
इन्सान दुनिया में महज पत्थर बन रह जायेगा
कोई नहीं होगा रिश्तों की दुनिया में
आँखों में बिन नमी के इन्सान किस से नेह पायेगा।

अंगना सूनी किसको ये पीर बताएँगी
गवाह होंगे बस आँखों के आंसू
माँओं की सुनी गोद बताएँगी
संकल्प लेकर ही हम बेटियाँ बचा पाएंगे ।

समीक्षा

निराला की काव्य–साधना

डॉ0 बहादुर मिश्र
प्रो0 हिन्दी विभाग, ति0माँ0 भा0 वि0 वि0
फोन : 0641–428672

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी की बहुमंजिली इमारत के ऐसे कंगूरे हैं, जो दूर से ही दिखाई पड़ते हैं। मौसम के लगातार थपेड़े खाने के बावजूद जिनकी चमक फीकी नहीं पड़ी। निराला एक ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार का नाम है, जिनकी प्रतिभा का विस्फोट यों तो कई दिशाओं में होता है, पर सबसे ज्यादा धमक और चमक की प्रतीति होती है काव्य–क्षितिज पर अर्थवेत्ता या कि अर्थगौरव के लिहाज से वे सब पर अकेले भारी पड़ते हैं। यह विशेषता उन्हें 'अन्यतम कवि' सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

संसार की विचित्र गति है। यहाँ लोगों को तरु–शिखर तो दिखाई पड़ते हैं, पर अपने माथे पर उठाये रखने वाले तरु–मूल प्राण उनकी दृष्टि से ओझल रहते हैं। निराला तरु–शिखर हैं तो उनकी धर्मपत्नी मनोहरा तरु–मूल। डाली पर बैठकर उसी को कुल्हाड़ी से काटने वाले 'कलुआ' को कवि कुल चूड़ामणि कालिदास बनाने को जो श्रेय विद्योत्तमा को जाता है, वही श्रेय मनोहरा देवी को मिलना चाहिए, जिन्हौंने सूर्यकांत त्रिपाठी को हिन्दी संसार का 'निराला' कवि बनया। एक रात दोनों में हिन्दी को लेकर बकझक क्या हुई, निराला की दशा की दिशा ही बदल गई। एक झलक देख सकते हैं– ''तुम हिन्दी–हिन्दी क्या करती हो, हिन्दी में क्या है? ''जब तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं है–उन्हौंने कहा–यह तो तुम्हारी जबान बतलाती है। बैसवाड़ी बोल लेते हो बस! तुलसीकृत रामायण पढ़ी है? खड़ीबोली का क्या जानते हो?

निराला को लगा, मनोहरा के रुप में साक्षात् हिन्दी की देवी प्रबोध रही हो। तब वे बंगाल में रहते थे। गाँव की बैसवाड़ी के अलावा बंगला बोल लेते थे। फिर तो उनकी दिशा ही बदल गई। तुलसीकृत रामायण के अलावा तत्कालीन श्रेष्ठ कवियों को पढ़ गए। पर उनका मन मध्यकालीन कवियों, खासकर पद्शाकर के चुहचुहाते कवित्रों में कही अधिक रमने लगा। कविता रचने के लिए उनकी कलम अकुलाने लगी। फलस्वरुप, उनकी पहली कविता 'जन्मभूमि' शीर्षक से 1 जून 1920 की 'प्रभा' में छपी। कहते हैं, उनकी यह कविता बंगला कवि जितेन्द्र लाल राय की तर्ज पर रची गई थी। उनकी पहली मौलिक कविता, लेकिन क्रम से दूसरी 'अध्यात्मफल' नाम से 'प्रभा' में ही 1 नंवबर,1921 को छपी। फिर तो वे अबाध लिखते रहे तब तक, जब तक उनकी उँगलियों में कलम पकड़ने की ताकत रही। 'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है'– उनके जीवन–काल की अंतिम कविता है। 1961 के उत्तराय में रचित यह कविता अब निराला रचनावली के दूसरे खंड में संकलित है। उनकी समस्त कविताएँ उनकी रचनावली के पहले दो खंडों में संगृहीत हैं। रचनावली में आने के पूर्व ये रचनाएँ अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अयिमा, बेला, नये पत्ते, आराधना, अपरा, अर्चना सांध्यकाकली, गीतकुंज और असंकलित कविताएँ नामक पुस्तकों के रुप में प्रकाशित हो चुकी थीं।

आलोचकों ने निराला की कविताओं को कुल तीन चरणों या कोटियों में विभक्त किया है। 1920 से 1938 तक व्याप्त प्रथम चरण की रचनाओं में अनामिका, परिमल, गीतिका और तुलसीदास की गणना होती है तो 1939 से 1949 तक व्याप्त द्वितीय चरण की रचनाओं में कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला और नये पत्ते की। 1950 से 1961 तक व्याप्त तृतीय और अंतिम चरण की काव्य–कृतियों में अर्चना, आराधना, गीतगुंज और सांध्यकाकली के नाम उल्लेख्य हैं।

जुही की कली, राम की शक्तिपूजा, भिक्षुक, विधवा, सरोज स्मृति, तोड़ती पत्थर, मित्र के प्रति, सम्राट् अष्टम एडवर्ड के प्रति जैसी चचिर्त कविताएँ प्रथम चरण के दौरान लिखी गईं। इन कविताओं के तीन स्तर स्पष्ट देखे जा सकते हैं। पहले स्तर की कविताएँ की अवधि मोटे तौर पर 1920 से 1929 के बीच मानी जा सकती है। इसी दौरान कवि की कुछ महत्वपूर्ण कविताएँ

प्रकाश में आती हैं; जैसे–जुही की कली, तुम और मैं, पंचवटी–प्रसंग, विधवा, भिक्षुक, संध्या सुंदरी, वीणावादिनी, बहू, दिल्ली, स्मृति, जागो फिर एकबार, महाराज शिवाजी का पत्र, रेखा, कवि।

दूसरा दौर निराला की गीतात्मक रचनाओं का दौर है। यह दौर अमूमन 1936 तक जारी रहता है। इसी दौरान उनकी 'गीतिका' प्रकाशित होती है। यह बात अलग है कि निराला 1929 के पहले ही गीतात्मक प्रवृत्ति की कविताएँ रचने लगते हैं; मसलन–दूत, अलि, ऋतुपति के आये, निशा के उर की खुली कली, अलि, धिरि आये धन पावस के, हमें जाना है जग के पार इत्यादि। दूसरे दौर में वे सिर्फ गीत रचते हैं। इनमें 'नयनों में हेर प्रिये, रँग गयी पग–पग धन्य धरा; सखि वसंत आया; मौन रही हार; कौन तम के पार; जागो, जीवन–धनिके; जला दे जीर्ण–शीर्ण प्राचीन, भारति जय–विजय करे और सर्वोपरित; वरदे, वीणावादिनी वरदे' उल्लेखनीय हैं।

ध्यातव्य है कि पहले दौन में 'वीणावादिनी' नाम से जो, कविता रची गई थी, दूसरे दौर में उसी का परिवर्धित रुप है 'वरदे, वीणावादिनी। इनमें से 'वीणावादिनी' का प्रकाशन 23 फरवरी, 1924 को 'मतवाला' में हुआ था, जबकि 'वरदे, वीणावादिनी का पटना से प्रकाशित मासिक 'युवक' में सितंबर, 1931 को हुआ। दोनों से एक–एक बंद देखे जा सकते हैं–

अयि मधुरवादिनी, सदातुम रागिनी–अनुरागिनी,
भर अमृत–धारा आज कर दो प्रेम–विह्वल हृदयदल,
आनंद–पुलकित हों सकल तब चूम कोमल चरण तक!
(वीणावादिनी)

वरदे, वीणवादिनी वरदे!,
प्रिय स्वतंत्र–रव अमृत–मंत्र नव, भारत में भरदे!,
काट–अन्ध–उर के बन्धन–स्तर/
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर/
कलुष–भेद–हम हर प्रकाश भर/
जगमग जग कर दे।

प्रथम चरण का तीसरा और अंतिम दौर सितंबर, 1933 तक चलता है। दूसरे दौर की तरह ही इस दौर की कड़ी भी पीछे से निकलती है। इस दौरान जो महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित होती हैं, उनमें मित्र के प्रति, सरोज–स्मृति, प्रेयसी, राम की शक्तिपूजा, सम्राट अष्ट्म, एडवर्ड के प्रति तथा वनबेला के नाम लिये जा सकते हैं। इनमें से 'सरोज–स्मृति' को आलोचकों ने हिन्दी का सवेत्तिम शोकगीत ठहराया है तो ' राम की शक्तिपूजा' को क्लासिकीय एवं ड्रैमैटिक पैटर्न पर आधारित महाकाव्योचित गरिमामंडित सफलतम लंबी कविता। बकौल डॉ0 परमानंद श्रीवास्तव ''सरोज–स्मृति'' के केन्द्र में कवि की व्यक्तिगत दुनिया है, जो वास्तविक दुनिया की जटिलता से 'जहाँ–तहाँ टकरा रही है, 'राम की शक्तिपूजा' के केन्द्र में वास्तविक दुनिया है, जो व्यक्तिगत जीवन के कठोर संघर्ष के निरंतर संपर्क में है।'' 'सरोज–स्मृति' मे जहाँ वे अपनी निरुपायता को यह कहकर कोसते हैं– ''धन्ये! मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित न कर सका! जाना तो अर्थागमोपाय/ पर रहा सदा संकुचित काय/ ललाट अनर्थ आर्थिक पथ पर/ हारता रहा मैं स्वार्थ–समर/ (और अंत में) दु:ख ही जीवन की कथा रही/ क्या कहूँ आज, जो नहीं कही/ 'तो' राम की शक्ति पूजा में अन्याय जिधर, है। उधर शक्ति! तथा धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,/ धिक् साधन,, जिसके लिए सदा ही किया शोध!/ जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का न हो सका ''सदा कहकर अपनी समस्त संचित वेदना को सहस्त्रमुखी बनाकर प्रवाहित कर देते हैं। अपनी एकमात्र पुत्री सरोज का उद्धार न कर पाने की विवशता है तो दूसरी में सीता के बहाने पत्नी मनोहरा का उद्धार न कर पाने की काट खाने वाली बेबसी! और यहीं ये दोनों कविताएँ वैयक्तिक होकर भी सार्वजनीन हो जाती हैं।

निराला–काव्य के दूसरे चरण की सबसे बड़ी खूबी उसका यथार्थवाद है। कुकुरमुत्ता, अणिमा, नये पत्ते इत्यादि मे हास्य के तत्व आ गए है, पर वे शुद्ध हास्य नहीं है। वास्तव में ये कविताएँ सामाजिक यथार्थ बोध की ईमानदार अभिव्यक्तियाँ है। 'ककुरमुत्ता' में तो व्यंग्य की दोहरी धार देखी जा सकती है। सर्वहारा का प्रतीक बना 'कुकुरमुत्ता'। एक तरफ पूँजीवाद पर प्रहार करता है तो दूसरी तरफ संकीर्ण प्रगतिवादियों पर। ''खजोहरा'' कुत्ता भौंकनेलगा, झींगुर डटकर बोला ''महगू–महगा रहा'' जैसी कविताओं में 'निराला का यथार्थवादी चित्रण बुलंदी पर मिलता है।

इस दौर में प्रकाशित बेला नामक काव्य में उनकी कुछ महत्वपूर्ण गजले हैं, जो हिन्दी की अपनी चीजें लगती है। एक शेर देखिए– ''खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो,/ लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं। कुछ गजलें रुमानी मिजाज की बन पड़ी हैं तो कुछ प्राकृतिक संवेदना की। कुल मिलाकर दूसरे चरण की कविताएँ निराला के नए, मगर ठोस कवि–रुप से रु–ब–रु कराती हैं।

तीसरे चरण का समय 1950 से 1961 के अक्तूबर तक का है। 15 अक्तूबर को उनका देहावसान हुआ। अनुमानतः अंतिम सांस लेने तक वे लिखते रहे। इस दौर की रचनाओं का स्वर भक्त्यात्मक है। इसमें आध्यात्मिक गीत काफी संख्या में रचे गये। लेकिन, भक्ति और अध्यात्म के ये स्वर हारे हुए हरिनाम के नहीं बल्कि आशा और जिजीविषा के हैं। हाथ कंगन को आरसी क्या! उनकी अंतिम कविता की पहली कुछ पंक्तियाँ साफ बता देती हैं। देखिए–

''पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है
आशा का प्रदीप जलता है हृदय–कुंज में
अन्धकार पथ एक रश्मि से सुझा हुआ है
दिङ्निर्णय ध्रुव से जैसे नक्षत्र–पुंज में।''

''आशा का प्रदीप और एक रश्मि– जैसे शब्द अंधकार पर प्रकाश के, निराशा पर आशा के, मृत्यु पर अमरत्व की विजय–दुंदुभि के दिगंतव्यापी स्वर हैं।

इस चरण की कविताओं की प्रकृति देखकर किसी को भी भ्रम हो सकता है कि निराला प्रतिगामी हैं। लेकिन, प्रथम चरण की 'अध्यात्म–फल, तुम और मैं– जैसी आध्यात्मिक मिजाज वाली कविताओं को देखकर यह भ्रम मिट जाता है। असल में यह उनकी अंतर्वर्त्ती धारा रही है, जिसका पूर्ण विकास अंतिम चरण में देखने को मिलता है। इस चरण की कविताओं में जहाँ निराला की ग्रामीण संवेदना से साक्षात्कार होता है, वहाँ ध्वनि एवं शब्द के साथ उनका खिलंदड़पन भी, जैसे–ताक कंमसिंन वारि' कुछ कविताओं में पाठान्तर भी देखने तो मिलते हैं। जो हो, निराला की कविताएँ समय के शिलालेख पर उत्कीर्ण ऐसे सुरम्य चित्र हैं, जो न सिर्फ उनके निजी जीवन, बल्कि मानव मात्र की संवेदना को समग्रता में उकेरते हैं।

गजलें

आज तक

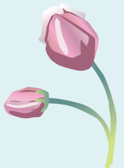

डॉ0 अनिल मिश्र
न्यू हैदराबाद, लखनऊ

1

आज तक सब ने मुझे काम का सामाँ समझा
और उसको ही सही हाँ दिले नादाँ समझा

बात जब उठ ही गयी तो ज़रा सुन लो तुम भी
ज़िन्दगी तुमने मुझे कब कहाँ अपना समझा

बाद मुद्दत के किसी ने मिरे जज़्बात छुए
आँख भर आई किसी ने मुझे इंसाँ समझा

सोचता था मैं सुलझ जाएगी उलझी गुत्थी
वाकई आसाँ नहीं है जिसे आसाँ समझा

जाल के ऊपर बिछाया गया था दाना वो
था परिंदा बहुत नादां उसे दाना समझा।

2.

फूल की खुशबू बुलाना चाहते हैं आपको
हम ख्यालों में बसाना चाहते हैं आपको
ज़िन्दगी के गीत के आरोह औ' अवरोह में
साँस की सरगम बनाना चाहते हैं आपको
रुठने में औ' मनाने में कसम क्या लुत्फ है
रुठिये जी फिर मनाना चाहते हैं आपको
आइये लग के लबों से इक गज़ल बन जाइये
शेर पढ़–पढ़ गुनगुनाना चाहते हैं आपको।

कहानी

आम आदमी

नाजमुन नवी खान ''नाज''
जे.ई. (मिस) कॉनकोर
मो0 : 09560298925

दुर्बल काया, चेहरे पर दाढ़ी का जाल, फटे जूते से बाहर दिखते पैर, आँखों में निराशा के तैरते भावों को लिए एक मानव के चेहरे पर अचानक रेत में गिरी कुछ बूंदों की खुशियाँ, भूखों को रोटी दिखने की खुशी के समान भाव चेहरे पर नजर आने लगते हैं। चौराहे पर एक सरकारी विज्ञापन को देखकर यह भाव उत्पन्न होते हैं जिसमें आम आदमी के लिए नाना प्रकार की योजनाएं लिखी हुई हैं। उस मानव को लगा कि वह भी आम मानव है। अतः यह सब कुछ उसके लिए है। अपने जीवन में घटित हुयी पिछली घटनाओं ने उसके अंदर यह विश्वास उत्पन्न किया था, वो एक आम आदमी है। उसके दिलो दिमाग में बीते दिनों वो घटना ताजी हो उठी जब वह ईश्वर के दर्शनार्थ लाइन में लगा था तभी अचानक एक नेता के आने पर उसको दर्शन से रोक कर कहा गया कि तुम लोग आम आदमी हो और लाइन में लगे रहो, उस दिन को तो वो भूल ही नहीं सकता, जब उसका भाई अस्पताल में आपातकालीन अवस्था में पहुंचा था इसी बीच एक उद्योगपति के आन पर सारे अस्पताल के डाक्टर एवं कर्मचारी उसे भाई को मरणासन्न अवस्था में छोड़ कर चले गये थे, और हां उसके आम आदमी होने की पहचान पर मुहर लगाती वो घटना भी ताजी हो उठी जब वह अपने माता पिता के साथ सफर कर रहा था, और एक रईस के आने पर बूढ़े माता पिता को खड़े होकर यात्रा करनी पड़ी थी। इन घटनाओं को याद करते करते उसके चेहरे की चमक बढ़ती ही जा रही थी। उसे खुद के आम आदमी होने पर पूरा विश्वास हो चला था। वह अपने पैरों में पड़े छालों के दर्द को आम आदमी होने के एहसास को भुला चुका था उसको अपने आम आदमी होने पर गर्व की अनुभूति हो रही थी। विज्ञापन में रोटी, कपड़ा, मकान, रोजगार सब कुछ देने का विश्वास जताया गया था। बिना समय गंवाये वह आम आदमी सरकारी दफ्तर पहुंचा और पूछा कि मैंने जो आम आदमी के लिए दी जाने वाली सुविधाओं का विज्ञापन पढ़ा उसमें कितनी सच्चाई है। दफ्तर में मौजूद कर्मचारी ने पान थूकते हुए कहा, भाई तूने पढ़ा तो सही है लेकिन तू सिद्ध कैसे करेगा कि तू एक आम आदमी है। कुछ सुबूत साक्ष्य हैं तेरे पास। मानव का माथा चकरा गया। वो तमाम बीती घटनाओं से खुद को आम आदमी होने का भ्रम पाल गया था। लेकिन अब उसको सिद्ध करना है कि मैं एक आम आदमी हूँ। बाबू ने पान लाने का संकेत किया, पान खाने के बाद बोला, तुझको गरीबी रेखा के नीचे का प्रमाण पत्र बनवाना पड़ेगा फार्म भरकर जमा कर दो एन्क्वायरी में। समझ लेना काम हो जायेगा। पांव में बैंडेज लगाने के लिए रखे रुपये से उसने फार्म खरीदा और भर कर जमा कर दिया। उसने सुनहरे भव्यि के सपने देखने में अपना सारा दर्द भुला दिया था। दिन बीतने के साथ मानव का मन विचलित होने लगा था वो फिर से दफ्तर पहुंचा और बाबू से पूछा कि उसके फार्म का क्या हुआ। बाबू ने कहा फाइल निकालनी पड़ेगी कुछ खर्चा पानी दो उसके बाद ही कुछ हो पायेगा। मानव ने एक पल विचारा और फिर एक निर्जीव मगर सारी दुनिया को चलाने वाला एक कागज का टुकड़ा बाबू के हाथ में थमा दिया। बाबू ने कहा 15 दिन के अंदर जांच हो जायेगी। इंतजार की बेला खत्म हुई और वह घड़ी भी आ गयी दरवाजे पर खट–खट की आवाज हुई, देखा तो अधिकारी महोदय द्वार पर खड़े थे। वो उस भोले मानव को स्वर्ग के द्वारपाल सा नजर आ रहे थे। उसने फौरन ही उनको अंदर बैठाया और सेवा भाव से चाय–पान की व्यवस्था में लग गया। अधिकारी महोदय ने कहा कागज लाओ जिससे पुष्टि हो सके कि फार्म में भरी जानकारी सही हैं। मानव के माथे पर बल पड़ गया उसके पास तो ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं था। अधिकारी महोदय के हाथ पैर जोड़ने पर एक उपाय पता चला कि अगर कोई सक्षम व्यक्ति 'सांसद/विधायक' प्रमाणित कर दे तो उसका काम बन जायगा। नेताजी जिन्दाबाद के नारे उसके कानों

में गूंजने लगे, अभी जल्द ही चुनाव के दिन बीते थे और वही भी तो नेताजी के प्रचार प्रसार में जोर शोर से लगा था। बिना दोपहरी की धूप की परवाह किये वह झंडे बैनरों से लेकर जनसभा में कुर्सी तक लगाया करता था। उसके कंधे पर हाथ रखकर नेताजी ने कहा था, चौबीस घंटे जब भी जरुरत पड़े आ जाना। सदैव सेवा में तत्पर रहूँगा। अधिकारी महोदय को धन्यवाद देकर उसने अगली सुबह नेताजी के यहाँ जाने का प्लान बना लिया। भोर होते ही जल्दी से नहा धोकर नेताजी की कोठी पर पहुँच गया और अंदर जाने लगा तो गेट पर प्रहरी अर्थात गार्ड ने रोका और टोका, कहाँ जाता है। उसने कहा नेताजी से मिलना है। पूछा गया कोई अपाइंटमेंट हैं। ये क्या होता है हम तो ऐसे ही चले जाते थे झंडा बैनर लाने के लिए चुनाव के समय में। यहीं बैठा रह, नेता जी सो रहे हैं। एक बार देख लें, सुबह का 9 बज रहा है जग गये होंगे। तुम्हारी तरह खाली नहीं रहते हैं कि जग गये सबेरे 4 बजे से। बहुत काम करना होता है। जनता के हित के लिए। प्रत्युत्तर मिला गार्ड से। मानव ने दो तीन घंटे जैसे तैसे बिताये। इधर–उधर घूम घाम कर और हिम्मत समेट कर पूछा एक बार देख लें। ठीक है देख कर बताते हैं। कुछ देर बाद बाहर आकर वो बोला नेताजी तो दिल्ली चले गये हैं एक सप्ताह बाद आना। टाल मटोल होते देख उसने समझ लिया था कि यहाँ काम नहीं होना है। इन्हीं सब भाग दौड़ में उसके घर का राशन खत्म हो चला था। उसने फिर से अपनी जीविका का साधन फावड़ा उठाया और चल दिया मंडी की ओर। वह यह पूरी तरह समझ चुका था कि सब बातें केवल पेपर और टीवी के विज्ञापनों में ही अच्छी मनमोहक दिखलाई देती है। नेता लोग तो जिस तरह बरसात में मेंढक दिखलाई देते हैं उसी तरह चुनावी मौसम में नजर आतें हैं। दूर से सुनायी देता है एक गाना ... चल अकेला चल अकेला, तेरा कोई साथ न दे तू खुद से प्रीति जोड़ ले। ... उसको उत्साहित कर रहा था।

कविता

मंजुल भटनागर

तपती रेत

ताप बढ़ता
रेत तपती
दूर तपते जंगल
तमतमाकर
सूरज बरसता
आज हो या कल
ईट के जंगल
बनें भट्टी
किस ठाँव जाऊं
सोचती मुश्किल,

लूँ के थपेड़े तन जलाएँ
पेड़ भी व्याकुल
ताल खाली नदी सरकती
गर्भ में हरपल,

परिन्दें को प्यास भटकाती
हर गली हर नल
आग सी पग डंडियाँ हैं
चैन खोता हरपल,
कवयित्री भटनागर।

गर्मी

जेठ दोपहरी
गूंजता सन्नाटा
लूँ के थपेड़े
मौन रास्ता
दूर कहीं पानी होगा
ऐसी ही कुछ
मृग मारिचका
खेत खलिहान ताकते
बेबस किसान
भविष्य के स्वप्न
बंद कमरे
वातानुकूलित
मौसम को पकड़ने का
शायद कोई लतीफा।

समीक्षा

पत्रकारिता एक कौशल

दयानन्द जायसवाल
भागलपुर (बिहार)
मो0 : 9931240303

आधुनिक युग में पत्रकारिता एक अहम आयाम है। आज मानव ज्ञान–विज्ञान की नवीन उपलब्धियों के अतिरिक्त सामसामयिक गतिविधियों के प्रति विशेष जिज्ञासु हो उठा है। अतः हमें पत्रकारिता को एक ''कौशल'' के रुप में स्वीकार करना चाहिए। परन्तु, जैसे कोई कुशल कारीगर बाजार की जरुरतों के अनुसार माल तैयार करता है, पत्रकार भी वैसे ही लिखना–परोसना शुरु कर दे जो लोगों को भाता है तो यह व्यावसायिकता की सहज प्रवृति होगी। पत्रकार के भीतर तो कहीं एक ज्योति का जलते रहना जरुरी है, जिसका प्रकाश एहसास कराता रहे कि उसका पेशा डॉक्टर अथवा अध्यापक की तरह है। पत्रकारिता यदि पेशा है तो उसे इन्हीं डॉक्टर अथवा अध्यापक के अर्थों एवं आयामों में समझना होगा जो आने वाले कल के लिए उत्तरदायी भी है।

प्रत्येक देश और समाज के सामने एक ऐसा दौड़ आता है जब चारों ओर घनाअन्धकार होता है– दुर्बलता, हताशा, अचेतन और पतन का अन्धकार। ऐसे अन्धकार में इतिहास धीरे–धीरे करवट बदलने के तैयारी करता है। वहाँ पत्रकारिता अन्धकार के विरुद्ध विद्रोह न कर उजाले की तस्वीरें बनाने का काम करती है। पत्रकारिता अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का एक सशक्त माध्यम है। लोकतंत्र तभी कारगर हो सकता है जब नागरिकों को अपने समाज और संसार को, ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की नई–से–नई घटनाओं की तथा उसके मूल में काम कर रही प्रेरणाओं व प्रवृत्तियों की जानकारी निरंतर मिलती रहे जो पत्रकार का विवेक, दायित्व एवं जागरुकता के निष्ठापूर्ण प्रयास का प्रतिफल होगा। पत्रकार, संवाददाता, संपादक, प्रकाशक शून्य में कार्य नहीं करते । वे समाज की मान्यताओं, धारणाओं, पाठकों–दर्शकों के सोच को प्रभावित करते हैं। जिसका उदाहरण एवं विचारणीय विन्दु है– 'आवेश, उन्माद, भावनाओं, राजनीति और स्वतंत्रता आन्दोलन को गहरायी तक प्रभावित करने वाला व्यक्तित्व के 'गाँधी साहित्य' इतना लोकप्रिय हो गया था कि बुक स्टॉल पर मिलने नहीं लगा, किन्तु समय के थपेड़े के साथ फीका भी पड़ गया। देश की नई पीढ़ी उन्हें हास्यास्पद समझने लगी। दरअसल पत्रकारिता का यह दायित्व है कि पाठकों की जिज्ञासाओं को जगाना, उससे संबंधित जानकारी देना। ज्ञान–विज्ञान की नई खोजों से परिचित कराना। पत्रकारिता करने वाले पत्रकारों की दौड़ सरकारी कार्यालयों में बड़े पदों पर बैठे प्रशंसकों की ओर नहीं, वरन् उस मनुष्य को समझने के लिए होनी चाहिए जिसके विकास की सारी प्रक्रिया चल रही है। सजग पत्रकार का काम सामाजिक भावनाओं, मान्यताओं एवं मूल्यों को बदलना भी है। जग जीवन में प्राण पोषक मानवता के तत्व, सत्य, अहिंसा, स्वदेश प्रेम, मुक्ति राष्ट्रीय एकता, मानव प्रेम आदि का अनुसंधान भी हो ताकि पत्रकारिता आलोक–स्तम्भ बनी रहे। आम छवि को सर्वांगीण रुप से उजागर करना चाहिए, जो एक आवश्यक कार्य है। इसके अभाव से हमारे पत्रकारिता–दर्पण धुंधले न हों। जन–जीवन के मूल्यों से खिलवाड़ करने वाली कोई भी पत्रकारिता आधुनिक एवं परिवर्त्तन के नाम पर अपने पाठकों की संख्या मे वृद्धि तो कर सकती है; किन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से वह कभी श्रेष्ठ नहीं हो सकती ।

हमारी भारतीय भाषाओं का अधिकतर साहित्य हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से जनता के बीच आ पाया है। यह तथ्य निर्विबाद रुप से स्वीकार्य है कि हिन्दी में भारतेन्दुयुग, द्विवेदी युग और छायावाद युग के संपादक प्रायः अव्यावसायिक रहे है।, इसलिए हिन्दी पत्रकारिता भारतेन्दु युग से लेकर छायावदोत्तर कालीन केदारनाथ अग्रवाल, धर्मवीर भारतीय, जगदीश गुप्त, नागार्जुन मुक्तिबोध, शमशेर, हरिशंकर परसाई, रघुवीर सहाय, कमलेश्वर, पं0 विद्या निवास मिश्र और शरद जोशी जैसे समर्थ लेखकों का योगदान रहा है। इसके बाद रचनाकारों की नई पीढ़ी की एक लम्बी कतार दिखाई देती है; जिसमें रचना धर्मिता के नाम

पर कोई विशिष्ट कोटि का साहित्यिक अवदान हो पाठक आशान्मुख हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि पत्रिकाएँ और पत्रकार जनता के हितों के संरक्षक हैं, लोकसत्ता के अभिभावक हैं। पत्रकारों की कलम समाज की प्रतिगामी शक्तियों का सामना ही नहीं की बल्कि, मानव और मानवता के अधिकारों कें संरक्षण में अभूतपूर्व योगदान भी दी। भाषा को भी जीवंत रखने में, उसमें चेतना शक्ति भरने में और उसे समृद्ध बनाने में पत्रिकाओं का जबरदस्त दायित्व होता है। पत्र–प्रत्रिकाओं के लिए भी एक आवश्यक आयाम में बाजार जुड़ जाता है जिससे संपर्क के द्वार खुलने लगते हैं। आवश्यक नहीं कि वे व्यापार या बाजार से सीधे–सीधे जुड़ें। साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संपर्क बढ़ते हैं। धर्म–दर्शन, तीर्थ–उत्सव, खान–पान, वसन–परिधान, कला–संगीत आदि ऐसे आयाम हैं, जो बाजार का हिस्सा तो नहीं होते, लेकिन बाजार इनके विकास का आधार, यानी जनसमुह उपलब्ध कराता है। जहाँ अधिक प्रकार के लोग मिलते हैं, वहाँ विचारों और विश्वासों का आदान–प्रदान भी होता है; दृष्टिकोण और सपनों का साझा होने लगता है। यही कारण है कि पाठकों की संख्या में वृद्धि होती है। विचारें जनसमूह में आते हैं। समाचार–पत्रों या पत्रिका के प्रकाशन में प्रेरणा एकमात्र आर्थिक लाभ की नहीं होती क्योंकि, प्रकाशक भी किसी–न–किसी सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक या सांस्कृतिक दायित्व बोध से प्रेरित होता है, जो शुद्ध वित्तीय लाभ से भिन्न या उपर होता है।

दुनिया के अच्छे समाचार–पत्रों के आरंभिक दौड़ पर दृष्टि डालें, तो इस बात की पुष्टि होती है कि प्रकाशकों के सामाजिक सरोकार अवश्य रहा करते थे। वे एक विचार से बंधे रहते थे और उनका एक मूल्यबोध हुआ करता था। किसी–न–किसी प्रकार के लोक–दायित्व का एहसास उन्हें था। ऐसे में प्रकाशक और संपादक के बीच केवल मालीक और कर्मचारी के रिश्ते नहीं रहते। एक सामाजिक–दायित्व या लक्ष्य प्राप्ति की कामना, उसके लिए साझी–समझ उनके बीच एक सेतु का काम करता है। समाचार पत्रों या पत्रिकाओं के प्रत्येक अंक में विविध विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं। अतः संपादक वर्ग को उस विषय के प्रति न्याय करने के लिए अपनी लेखनशैली व भाषा को अधिक संपन्न, सशक्त और प्रतिभाशाली बनाना होता है। अतः यह स्वाभाविक है कि ऐसे प्रयत्नों के कारण भाषा के ऐश्वर्य में बृद्धि होती है। गुणवत्ता को टिकाये रखकर भी विषय को सुबोध बनाना अनिवार्य होता है, क्योंकि वह सामग्री समाज के हरेक स्तर के पाठकों तक पहुँचानी होती है। यह भी सत्य है कि पत्रकारों कों विशेषाधिकार है, परन्तु कानूनी तौर पर पत्रों और पत्रकारों से कानून भी यह अपेक्षा करता है कि वे लोगों की व्यक्तिगत मान हानी न करें; मिथ्या आरोप न लगाएँ और उनके वैयक्तिक एकान्त और निजी जीवन की गोपनीयता का अनुचित अतिक्रमण न करें। वास्तव में पत्रकारिता और कानून का संबंध एक अत्यन्त आधार भूत सामाजिक समीकरण का साक्ष्य देता है। यह समीकरण किसी भी देश की शासन प्रणाली और उसके स्वरुप का ही परिचय नहीं देता बल्कि यह बोध करता है कि इस देश में वाक् स्वतंत्रता कितना और कैसा है।

पाठकों और संपादकीय–समाचार–संकलन तथा चयन की नीति में गंभीर मतभेद नहीं होता क्योंकि, यह व्यापक समाज का सशक्त दर्पण होता है। प्रकाशन एक वर्ग, समुदाय या विचार धारा के अनुरुप चलता है। पत्रकारिता के व्यवसाय में प्रवेश करने वाले अधिकांश युवक तो गहरे सामाजिक बोध से प्रेरित होते हैं, लेकिन आज इस व्यवसाय के भीतर वातावरण कुछ ऐसा लगने लगता है, जिसमें बाहर के झाँकने पर सभी नग्न दिखते हैं; समाज के प्रति अपने उत्तर दायित्व को अनदेखा करते हैं। यह विचित्र विडम्बना है कि जिस समाचार–पत्र पर समाज कल्याण का भार रहता है; वह स्व व्यवसाय का पर्याय बनता जा रहा है। पत्र–पत्रिकाओं को आर्थिक सहायता के लिए विज्ञापनों की जरुरत होती है तथा कागज के लिए कोटा–परमिट। इसे पाने के लिए पत्रकार समाज के प्रतिष्ठित उद्योगपति या नेताओं से मधुर संबंध बनाए रखने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। फलतः आर्थिक शक्ति अनेक स्वतंत्र पत्रों का गला घोंट देती है। उनकी पत्रकारिता पत्र–पत्रिकाओं के संपादन की स्वतंत्रता शिथिल व मन्द पड़ने लगती है। इन्हें सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ लड़ना होगा, उन मान्यताओं को नकारना होगा, जो परंपरा के नाम पर जड़ता को प्रोत्साहित करती है। उन रीति–रिवाजों से छुटकारा दिलाने में सहायता करनी होगी, जिनकी प्रासंगिकता नहीं रह गई। पत्रकारिता समाज को गतिशील बनाने का और उन सभी बातों से मुक्त करने का प्रयास करे जो राष्ट्रों की प्रगति–दौड़ में पीछे रहने के लिए विवश करती है।

लघु–शोध

मैथिली शरण गुप्त की दृष्टि में "गुरुनानकदेव जी" का व्यक्तित्व

धर्मेन्द्र कुमार
अमृतसर विश्वविद्यालय
संपादक, हिन्दी साहित्य कोश, वाराणसी

मैथिली शरण गुप्त का जन्म 1886 ई0 में उत्तर प्रदेश के झांसी जिले के चिरगांव में हुआ था। ये राष्ट्रवाद की भावना से ओत–प्रोत हैं। इन्होंने गुरुकुल नामक महाकाव्य की रचना की है, जिसका आरम्भ गुरु नानक के आगमन के समय की परिस्थितियों से होता है।उसके बाद गुरु नानक के जीवन व दर्शन पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए दसों गुरुओं का वर्णन किया गया है। दसमें गुरु जी का विवरण अधिक विस्तृत रुप में दिया गया है। तत्पश्चात् बन्दा वैरागी (बन्दा सिंह बहादुर) का वर्णन किया गया है। अंत के परिशिष्ट में बन्दा सिंह बहादुर द्वारा किए गए युद्धों, उनकी शहीदी भाई मनीसिंह की शहीदी नादिरशाह और अहमदाबाद अब्दाली के आक्रमण तथा महाराजा रणजीत सिंह द्वारा सिक्ख राज्य स्थापित करने का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

गुरुकुल महाकाव्य की रचना के प्रयोजन का उल्लेख करते हुए 'उपोद्घात' में लिखा गया है– ''चिन्ता इस बात की है कि अधूरी रचनाओं के रुप में उसकी कुछ इच्छाएं पूरी हो जायं तो उनके लिए पुनर्जन्म न लेना पड़े और, इस प्रकार, अनधिकार चेष्टा से उसे इसी जन्म में 'मुक्ति मिल जाए!'' आगे लिखा है– ''तथापि इधर इस पुस्तक के लिखने की कोई सम्भावना न थी'।

मैथिली शरण गुप्त के गुरु नानक जी को पवित्र आत्मा वाले आत्मज्ञानी महापुरुष के रुप में माना है।इसके अनुसार पवित्र मन में ही प्रभु का रस–रुप प्रतिबिम्बित होता है और जिसकी लगन प्रभु के साथ लगी हो उसकी आज्ञा का पालन तो यह जगत अवश्य ही करेगा।इसके साथ–साथ यह भी बताया है कि आत्मबोध से ही मानव में चैतन्यता आती है और गुरु नानक जैसा आध्यात्मिक ज्ञानी पाकर पंजाब पुनः धन्यता के योग्य हो गया–

शुचि मानस में ही प्रतिबिम्बित होता है प्रभु का रस रुप
घट की डोर जब हरि से पानी क्यों न भरे भव कूप।
मिल सकता है किसी जाति को आत्मबोध से ही चैतन्य
नानक सा उद्बोधक पाकर हुआ पंचनद पुनरवि धन्य।

मैथिली शरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य 'गुरुकुल' के अनुसार निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर गुरु नानक देव जी के व्यक्तित्व का वर्णन किया जा सकता है–

सत्यता न्याय और समानता– सत्यता, न्याय और समानता स्थापित करने के लिए तो गुरु नानक देव जी इस संसार में आए ही थे। उन्होंने सत्यता और सच्चे आचरण पर सबसे अधिक बल दिया है। किसी व्यक्ति के हृदय में जितनी अधिक सत्यता होगी वह उतना ही दयालु, सहृदय, विनम्र और ईश्वर प्रेमी होगा।गुरु नानक देव के समय में तो सत्यता के दर्शन होने दुर्लभ थे।हर तरफ झूठ ही झूठ फैला हुआ था।ऐसा नहीं कि उस समय सत्यता का पूर्णतः अभाव हो परन्तु सत्य के पक्ष में आवाज उठाने वाला कोई नहीं था।ऐसी स्थिति में गुरु नानक देव जी ने पाखण्ड तथा आडम्बरों को उखाड़ फेंका और न केवल भारत में ही बल्कि अन्य देशों में भी सच्चाई का झंडा फहराया। आपने स्वयं सत्यता पर चलकर लोगों को उपदेश दिया कि सच्चे मार्ग पर चलने से मन की मैल दूर हो जाती है और हृदय निर्मल हो जाता है। इसके विपरीत जो लोग सत्य पर नहीं चलते, झूठ में लिप्त रहते हैं, उनका हृदय अपवित्र ही रहता है। तीर्थों आदि के स्नान से मन शुद्ध नहीं हो सकता।सत्य के बिना प्रभु की कृपा भी प्राप्त नहीं हो सकती ।

न्याय और सत्यता का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य जब सच्चाई के मार्ग को छोड़ देता है तब वह विकारों के दलदल में फंस जाता है। असत्यता के कारण उसे वास्तविकता दिखाई नहीं ही पड़ती। इस प्रकार वह माया के मोह से ग्रसित हो जाता है, माया का मोह और अधिक बढ़ जाने पर वह न्याय और अन्याय की परवाह हीं नहीं करता।यहाँ तक कि उसे अन्याय में ही न्याय नजर आता है।साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या? न्याय के लिए नियुक्त काज़ी भी अन्याय करने लगते हैं और रिश्वत लेकर दूसरे के अधिकारों को हनन करते हैं, इसीलिए गुरु नानक देव जी को अन्यायी काज़ियों और अत्याचारी शासकों के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ी।नवाब दौलत खां लोदी और उसके काज़ी ने

जब गुरु से कहा– हमारे लिए दीन और दुनिया की भलाई कौन सा रास्ता है? तब आपने जो पांच नमाजें बताई थीं, उनमें पहला स्थान 'सत्य' को और दूसरा स्थान 'न्याय' को ही दिया था।

मैथिली शरण गुप्त ने इसके लिए लिखा है कि जब तक मनुष्य सच्चा कर्म नहीं करता तब तक उसके अन्दर निर्मल विचार उत्पन्न नहीं हो सकते और निर्मल विचारों के बिना सारे धार्मिक कार्य जप–तप आदि व्यर्थ हैं–

यदि सत्कर्म नहीं करते हो भरते नहीं विचार पुनीत
तो जप–माला तिलक व्यर्थ हैं उल्टा बन्धन है उपवीत।

संसार के प्रत्येक प्राणी में प्राकृतिक रुप से उनके विशिष्ट लक्षण विद्यमान रहते हैं। जो उनके व्यक्तिगत अस्तित्व को दर्शाते हैं। प्रकृति का नियम ही ऐसा है कि एक ही माता–पिता की संतानें एक समान नहीं होती है, यहाँ तक कि दो जुड़वा बच्चों में भी कुछ न कुछ विभिन्नता अवश्य पायी जाती है जो उनकी विशिष्टता को बनाए रखती है। प्राणियों के मन में उनकी विशिष्टता की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है जो उन्हें अपने अलग अस्तित्व का एहसास कराती है। प्राणियों में विद्यमान यह विशिष्टता की प्रवृति संसार के व्यावहारिक अस्तित्व के लिए अतिआवश्यक है। गुरबाणी में इस विशिष्टता की प्रवृत्ति को 'हउमै' कहा गया है तथा यह भी बताया गया है कि सृष्टि के रचयिता परमात्मा ने सृष्टि के साथ ही प्राणियों के अंदर 'हउमै' को स्थापित किया है–

जिनि रचि रचिआ पुरखि बिधातै नाले हउमै पाई ।
जनम मरणु उसही कउ है रे ओहा आवै जाई ।।

मनुष्य विवेकशील बौद्धिक प्राणी है इसीलिए वह अपने विशिष्ट अस्तित्व के साथ–साथ अन्य प्राणियों के विशिष्ट अस्तित्व का भी ध्यान रखता है। प्रकृति ने मनुष्य को स्वतंत्र इच्छा प्रदान की है जिसके फलस्वरुप वह अपनी इच्छानुसार करता है तब संसार के व्यावहारिक अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है और मनुष्य स्वयं अपने विनाश का कारण बन जाता है। जब वे मनुष्य अस्तित्व में आया है तब से अनेक बार उसने अपनी स्वतंत्र इच्छा का दुरुपयोग करते हुए अपनी सीमाओं का अतिक्रमण किया है और हर बार किसी न किसी महापुरुष ने मनुष्य को उसकी विशिष्टता और अनेकता में एकता का एहसास दिलाया है। समस्त पैगम्बरों, अवतारों तथा संत महात्माओं ने मनुष्य को एकता और समानता का ही पैगाम दिया है।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में जब मनुष्य अपनी सीमाओं को इस प्रकार से लांघ चुका था कि पाशविक प्रवृत्ति ने उसके मानवीय गुणों को समाप्त कर दिया था। विदेशी आक्रमणकारी भारत पर आक्रमण करके भारतवासियों को लूटते थे और भारतवासी ऊंच–नीच द्वारा पैदा हुई आपसी फूट और स्वार्थ के कारण उनके अत्याचारों का शिकार बनते थे। ऐसे अवतार पर गुरु नानक देव जी ने समानता व एकता स्थापित करने के लिए जगह–जगह जाकर लोगों को उपदेश दिए।

मैथिली शरण गुप्त के अनुसार गुरु नानक देव जी ने बिखरी हुई मानवता के रोग को पहचाना और तत्पश्चात् मानवीय एकता, समानता तथा प्रेम को स्थापित करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने लोगों को उपदेश दिया कि समस्त मानव एक ही पिता की संतानें हैं। कोई भी घृणा के योग्य नहीं है। सभी धर्म एक समान हैं और उनका आधार भी एक ही है। अंतः हमें भ्रातृभाव के साथ रहना चाहिए जिससे कि समाज में सुख और शान्ति बनी रहे–

परम पिता के पुत्र सभी सम कोई नहीं घृणा के योग्य,
भ्रातभाव पूर्वक रह कर सब पाओ सौख्य–शान्ति–आरोग्य ।

इस प्रकार गुरु नानक देव जी ने मनुष्य के जातिगत और व्यक्तिगत अहंकार, आपसी वैर–विरोध, ऊंच–नीच, गरीबी–अमीरी आदि हर प्रकार के भेद को मिटाकर मानवीय एकता और समानता का मार्ग प्रशस्त कर दिया। उन्होंने 'विश्वबंधुत्व' तथा 'बसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श प्रस्तुत किया। गुरु जी का लक्ष्य था सम्पूर्ण मानव जाति में आपसी प्रेम और एकता स्थापित करना।

संतोष– सत्य के बाद संतोष पर भी गुरु जी ने काफी जोर दिया है। आप स्वयं ही परम संतोषी थे। जब बाबर ने आपके सम्मुख बहुत सा धन–द्रव्य और बहुमूल्य सामग्री भेंट करनी चाही तो आपने उसे ग्रहण करने से इन्कार कर दिया और कहा– सबको देने वाला वही सृष्टि–कर्ता है। जो व्यक्ति उसको छोड़कर किसी और के आगे हाथ फैलाता है, वह अपने नाम और मान–मर्यादा दोनों को बट्टा लगाता है और विशेषतः जो साधु–फकीर होकर मांगता है वह साधु–फकीर कहलाने का अधिकारी नहीं है। वह सच्ची साधुता से कोसों दूर है।

मैथिली शरण गुप्त के अनुसार गुरु नानक देव जी ने बाबर को फटकार लगाते हुए कहा– रे ! बाबर तू बड़ा दरिद्र है जो

दूसरों का माल लूटता है। तुझमें संतोष का अभाव है और जो व्यक्ति संतोषी नहीं है वह इधर–उधर लूट–पाट तो मचाएगा ही–

जो संतोषी जीव नहीं हैं क्यों न मचावेंगे वे लूट?

करुणा– शब्द 'करुणा' दया का पर्यायवाची है। यह परमात्मा का गुण है। गुरु नानक देव जी को यदि 'करुणा–सागर' की उपाधि दी जाए तो यह अत्युक्ति न होगी क्योंकि वे प्राणी–मात्र पर दया–दृष्टि रखने वाले थे। कोई व्यक्ति चाहे कितना ही बुरा और अत्याचारी क्यों न हो गुरु नानक देव जी सदैव उसका कल्याण करने की ही बात सोचते थे।

मैथिली शरण गुप्त के गुरु नानक देव जी के हृदय में प्राणीमात्र के प्रति अपार करुणा भरी हुई थी। मनुष्य क्या पशु–पक्षियों को भी वे भूखा नहीं देख सकते थे। इसीलिए जब उनके पिता जी उन्हें खेतों की रखवाली के लिए भेजते तो वे पशुओं को अपनी खेत से अनाज खाते देख कर अत्यंत प्रसन्न होते थे–

खेत चरे जाते थे उनके गाते थे वे हर्ष समेत,
भर भर पेट चुगो री चिड़ियो हरि की चिड़ियाँ हरि के खेत।

परोपकार– गुरु नानक देव जी को यदि परोपकार की मूत्ति कहा जाए तो यह उचित ही होगा। उनका सारा जीवन ही परोपकार में बीता स्वयं अपने लिए या अपने परिवार के लिए उन्होंने कुछ भी नहीं किया। बालकपन से ही वे दूसरों के हित के लिए सदैव तत्पर रहते थे। घर की चीजों को गांव के गरीबों में बांट देना तो उनकी दिनचर्या बनी हुई थी। उन्होंने भूखों, गरीबों, लाचारों और अनाथों की हर प्रकार से मदद की। भूखों को भोजन कराना उनके लिए सच्चा सौदा था, जिसमें वे लाभ ही लाभ मानते थे। मैथिली शरण गुप्त के अनुसार गुरु नानक देव जी समाधि लगाकर नहीं बैठे बल्कि लोकोपकार हित देश–विदेश भ्रमण करते रहे क्योंकि दूसरों के दु:खों को दूर करके ही संतों के मन को शान्ति मिलती है–

प्रव्रज्या धारण की गुरु ने छोड़ बुद्ध सम अटल समाधि,
संत शान्ति पाते हैं मन में हर हर कर औरों की आधि।

धैर्य– दया, क्षमा, परोपकार, प्रेम और धैर्य आदि गुणों का महापुरुषों से गहरा सम्बन्ध है। गुरु नानक देव जी तो दया, क्षमा, परोपकार और धर्य की साक्षात् मूर्त्ति ही थे। उनका सम्पूर्ण जीवन ही धैर्य पर आधारित रहा है। जितने महान कार्य उन्होंने किए हैं वे धैर्य के बिना हो ही नहीं सकते थे। मैथिली शरण गुप्त के अनसुार गुरु नानक ने निर्भय होकर समानता और निष्पक्षता वाले धर्म का प्रचार किया। उनका मानना था कि हर एक व्यक्ति को श्रद्धा और प्रेम के सहित शुभ कर्म करने का अधिकार है–

निर्भय होकर किया उन्होंने साम्यधर्म का यहां प्रचार
प्रीति नीति के साथ सभी को शुभ कर्मों का है अधिकार।

गुरु नानक देव जी को सच कहने से कोई नहीं रोक सका। चाहे वह सिकन्दर लोदी का शाही कारागार हो या चाहे बाबर का दरबार। उन्होंने हर जगह पर बहुत ही निडरता और धैर्य के साथ अपनी बातें कहीं।

कर्मयोगी– भारतीय चिन्तन में कर्मयोग का विशेष स्थान है। कर्मयोग व्यक्ति को निष्क्रियता से बचने तथा क्रियाशील होने की प्रेरणा देता है। कर्मयोग गीता का भी मुख्य विषय है। कर्म का अर्थ है– क्रियाशील रहना। जो सदा कर्तव्यबुद्धि से कर्मों को करता है, वह कर्मयोगी है। उसका ज्ञानशून्य तपस्वियों से बहुत ऊंचा है, वह कर्मत्यागी ज्ञानियों से बहुत बढ़कर है।

गुरु नानक देव जी स्वयं समस्त सांसारिक कर्म करते हुए उनके परिणामों से अनासक्त रहे। कर्म के परिणाम के प्रति अनासक्ति कर्मयोगी का प्रमुख लक्षण है। उन्होंने गृहस्थ–जीवन व्यतीत करते हुए समस्त धार्मिक स्थानों का भ्रमण किया। वह न तो संसार में लिप्त रहे और न ही संसार को त्याग करके गुफाओं में जाकर बैठे बल्कि जो लोग कर्म का त्याग करके संसार से मुख मोड़ चुके थे और कर्महीनता के फलस्वरुप समाज के ऊपर बोझ बन चुके थे, उन्हें कर्मयोग का पाठ पढ़ाकर पुन: परिश्रमी और कर्मठ बना दिया। उन्होंने अपने आध्यात्मिक अनुभव को वाणी का रुप देकर न केवल उपदेश दिया बल्कि स्वयं करके दिखलाया–

अनुभव जन्य विचारों को निज दे दे कर वाणी का रुप,
उन्हें कर्मणा कर दिखलाते भाग्यवान वे भावुक–भूप।

तत्कालीन समाज में प्रचलित भाग्यवाद का खण्डन भी गुरु नानक देव जी ने कर्म–साधना के द्वारा किया है। हमारे अच्छे विचार तभी फलीभूत होंगे जब हम में मेहनत करने की शक्ति होगी। मेहनत सदा ही सृजनात्मक है और निकम्मापन

विनाशात्मक है।

आदर्श गृहस्थ और आदर्श त्यागी– मैथिली शरण गुप्त ने गुरु नानक देव जी को आदर्श गृहस्थ और आदर्श त्यागी के रुप में प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार वे गृहस्थ होकर भी त्यागी थे क्योंकि न तो उनके मन में अपने परिवार का मोह था कि उसमें लिप्त रहें और न हीं ऐसे निःस्नेह थे कि घर–परिवार छोड़कर वन में जा बैठें। इस प्रकार वे गृहस्थ नहीं वरन् गृहस्थ में त्यागी थे। उनके आदर्श गृहस्थ और आदर्श त्याग रुपी दोनों भावों को संसार में स्थापित करने के लिए दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें श्रीचन्द्र त्यागी और लक्ष्मीदास गृहस्थी था। अतः गृहस्थ और संन्यास दोनों क्रम से सफल हुए–

वे गृहस्थ होकर त्यागी थे न थे समोह न थे निस्नेह;
दो पुत्रों के मिष प्रकटे ये उनके दोनों भाव सदेह।
त्यागी था श्रीचन्द्र सहज ही और संग्रही लक्ष्मीदास;
यो संसार–सिद्धि युत क्रम से सफल हुआ उनका सन्यास।

गुरु नानक देव जी का दृष्टिकोण बहुत विशाल था, सारी पृथ्वी उनका घर था और सारे मनुष्य उनका कुटुम्ब। अतः उन्होंने छोटे कुटुम्ब का त्याग करके संसार रुपी विशाल कुटुम्ब को अपनाया। यह भी कहा जा सकता है कि गृह का त्याग करके भी वे गृहस्थ थे, जो अपने–आप में एक आदर्श है। इसी प्रकार दो पुत्र होते हुए भी गुरु जी ने गुरु गद्दी अपने सेवक लहिणा जी को सौंप दी यह भी एक आदर्श प्रस्तुत करता है। इसे उनका वैराग कहा जाए या अत्यधिक अनुराग। वास्तव में गुरु नानक का गृहस्थ और त्याग संसार के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करता है, जिस पर न तो वैराग हाबी है और न ही अनुराग।

महान कवि और संगीतज्ञ – गुरु नानक देव जी एक महान कवि और अपूर्व संगीतज्ञ थे। अल्पायु में ही उन्होंने काव्य रचना आरम्भ कर दी थी। उन्होंने स्वयं ही अपने को 'शायर' अर्थात् कवि कहा है–

नानकु साइरु एव कहतु है सचे परवदगारा।

मैशिली शरण गुप्त के अनुसार गुरु नानक ने अपने निजी अनुभवों को ही काव्य का रुप दिया है और उनकी अनुभूति अत्यधिक है तथा अभिव्यक्ति दृढ़ एवं सहज है। निजी अनुभवों के कारण गुरु नानक की काव्य शैली एक स्वतंत्र काव्य शैली है–

वही पूर्व आदर्श हमारे वेद विहित वेदान्त विशिष्ट
दिए सरल भाषा में गुरु ने हमें और था ही क्या इष्ट?
दृषद्धती तट पर ऋषियों ने गाए थे जो वैदिक मन्त्र,
निज भाषा में भाव उन्हीं के नानक भरने लगे स्वतन्त्र।

आपके काव्य में सूक्ष्मता, सर्वव्यापकता, दूरदर्शिता, कलात्मकता तथा मनोवैज्ञानिता स्पष्ट प्रदर्शित होती है। आपने काव्य के विभिन्न रुपों का प्रयोग किया है जिनमें श्लोक, वार, पद, अष्टपद, सोलहे, छन्त, थिति, पट्‌टी, पहरे, अलाहुणियाँ तथा बारागाह आदि प्रमुख हैं।

गुरु नानक देव जी की वाणी पढ़ने से पता चलता है कि उन्होंने अपने काव्य में समस्त रसों को स्थान दिया है परन्तु उनका प्रस्तुतीकरण इतना सहज और संयमित है कि पढ़ने वाले या सुनने वाले के मन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ सकता है। इसके अलावा अलंकारों तथा दृष्टान्तों को भी उचित स्थान दिया गया है। एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है कि गुरु नानक का काव्य बौद्धिक रचना नहीं बल्कि आध्यात्मिकता के अलौकिक अनुभव का प्रस्तुतीकरण ही है।

इस प्रकार राष्ट्र–कवि मैथिली शरण गुप्त ने अपनी काव्य–कला के द्वारा कुछ ही पंक्तियों में गुरु नानक देव जी के व्यक्तित्व के प्रमुख अंशों का वर्णन कर डाला है। प्रस्तुत शोध–पत्र में मैथिली शरण गुप्त की काव्य प्रतिभा तथा गुरु नानक के प्रति उल्लिखित उनके विचारों का विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है।

कविता

थका हूँ बहुत...

कृष्ण मोहन सिन्हा ''किसलय''
भागलपुर
मो0 : 8051491801

थका हूँ बहुत सफर जिन्दगी में
फिर भी सफर में चलते रहें हम

पाँव जख्मी बहुत हो गये ठोकरों से
कहीं ठहरा नहीं चलते रहें हैं हम

नींद आँखों में, बोझिल सी पलकें
कथा जिन्दगी की कहते रहें हैं हम

न ठंडी हवायें, न छाया कहीं भी
कड़ी धूप में भी, हँसते रहें हैं हम

चौराहे पे मैं, ठिठका खड़ा था
किसी मोड़ से, बढ़ते हुए हम

चारों तरफ फैला पानी ही पानी
बनकर पखेरु उड़ते रहे हैं हम

सह–सह के दर्द, जमाने का हरदम
किसलय सफर में हँसते रहे हैं हम।

कविता

माटी का घड़ा

ई0 भरत कुमार सिंह
भागलपुर
मो0 : 8083302278

माटी का घड़ा था, घर के कोने में पड़ा था
ना कोई देखरेख, न कोई इस्तेमाल
मानो उसकी जिन्दगी जैसे थी फटेहाल
बहुत ही नाजुक था जब चाक पर चढ़ा था
भट्ठी से निकला तो सपना इसका भी बड़ा था
जिस मौसम के थपेड़े ने इसे घर लाया था
वह सुहाना मौसम तो कब का जा चुका था
बेचारा कोने में पड़ा कुछ सोच रहा था
क्यूँ न मौसम के साथ मैं भी चला गया था
रोया तो तब भी था जब ये पीटने से पीटा था
अंतर बस इतना, तब आश थी, अब निराश था
इनकी करुण जम्भाई मानो कोई सुन लिया था
फिर कोई इसमें पानी की धार डाल दिया था
अरे ये क्या? होकर लबालब इठला रहा था
खुशी के मारे अपने सारे गम को झुठला रहा था
ओह! यह तो सपना था फ्रिजर का जमाना है
घर के ही कूड़ों के साथ बाहर मुझे भी जाना है
माटी का घड़ा फिर से माटी में मिलने को दिवाना है।

आलेख

कामायनी में 'लज्जा' और 'सौंदर्य' की अभिव्यंजना

शतदल मंजरी
गुड़गाँव, हरियाणा
मो0 : 8292090400

'कामायनी' अपने युग की क्रान्तदर्शी सर्वग्राही रचना है। अपने समय के समस्त चिंतन को समेटकर महाकवि जयशंकर प्रसाद ने इसे अपने दर्शन से अभिषिक्त कर काव्यमय रुप में प्रस्तुत करने का उदात्त एवं महान् प्रयास किया है।

'कामायनी' से पूर्व भी 'लज्जा' तत्व अन्य साहित्य–ग्रंथों में वर्णित था, परंतु उसका दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष अछूता ही रह गया था। पूर्व–साहित्य–ग्रंथों में उसे जगज्जननी देवी का एक रुप मानकर वन्दना की गई थी–

''या देवी सर्वभूतेषु लज्जारुपेण संस्थिता ।
नमस्तयै नमस्तयै नमस्तयै नमो नमः ।।''
(दुर्गासप्तशती)

वहीं यह भी माना गया है कि लल्जा कुलीनता तथा अभिजात्य का प्रतिरुप है–

''श्रद्धा सतां कुल–जनप्रभवस्य लज्जा।''

प्रसाद जी के सम्पूर्ण साहित्य में लज्जा और सौंदर्य की धारा अविच्छिन्न रुप से प्रवहमान् है। सौंदर्य की जो रसवती धारा उनकी चेतना के उत्तुंग एवं उज्ज्वल श्रृंग से फूट पड़ी वह उनके साहित्योपवन की विभिन्न क्यारियों को सींच रही है। उनके काव्य–तरु के फूलों और फलों में यही सुधा–रस छलक रहा है। सौंदर्य–दर्शन, जो उनकी प्रबुद्ध चेतना की उपज है उनके सम्पूर्ण साहित्य का मेरुदण्ड है। उनके साहित्य का विशाल, कलापूर्ण एवं भव्य भवन 'सौंदर्य' की आधार–शिला पर ही खड़ा हुआ है। इस भवन की नींव में वैभव और विलास कराह रहा है। इसमें ताजमहल का ऐश्वर्य अधिक है; किसी निर्धन की कुटिया की विपन्नता कम। इस भवन के अन्दर अगर मोती, हीरे और नीलम की चमक–दमक है इसके बाहर अमृत के सरोवर भी तरंगायित है, जिनमें स्वर्ण–कमल खिल रहे हैं, जिनके चारों ओर मालती और मल्लिका की कुंजे लगी है। उन्हीं कुंजों में उषा और प्रभात की लुका–छिपी, संध्या और दिवस की क्रीड़ा चल रही है। प्रसाद के सौंदर्य–भवन के अन्दर नीलम की प्यालियों में माणिक–मदिरा ढलती रहती है और इसके साथ ही स्वर्ण–पात्रों में आनन्द–सुधा भी चलती रहती है। उनके सम्पूर्ण सौंदर्य–दर्शन का सारभूत तत्व 'आनन्द' ही है। उनका एक ही पथ था जिसकी दो दिशाएँ थीं– तृष्णा का उत्तरोत्तर अविच्छिन्न विकास और उसी में तृप्ति का दर्शन। उनकी शुभ्र चेतना की जो यात्रा प्रेम और सौंदर्य के भवन से प्रारंभ होती है वह 'आनन्द–लोक' में पहुँचकर ही समाप्त होती है–

''इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना।
किंतु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं ।।''
अथवा ''
उस आनन्द भूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं।''
प्रेमपथिक

'प्रेम–पथिक' से प्रारंभ हुई उनकी यह यात्रा 'कायायनी' में जाकर पूर्ण होती है। उनकी सौंदर्य–चेतना से मानवीय और प्राकृतिक सौंदर्य की जो धाराएँ निस्सृत हुई है, वे आनन्दोदधि में मिलने के लिए व्याकुलता और अधीरता से दौड़ती हुई दिखाई पड़ती हैं। इन धाराओं में जो तरंगे दिखाई पड़ती हैं वे सब आनंद–समुद्र में पहुँचकर निस्तरंग हो जाती है। प्रसाद जी के सौंदर्य–दर्शन का यही सबसे बड़ा रहस्य है।

आनन्द का यही रुप 'कामायनी' में प्रतिष्ठित है। उसी परिवेश में जन्म लेने वाली श्रद्धा का इतिहास दूसरा है–

''छूने में हिचक देखने में पलकें आँखों पर झुकती है,

कलख परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती है''

श्रद्धा के लिए यह पूर्वाभ्यासरहित उपरिचित अनुभव है। इसमें विलक्षण परवशता है, स्वच्छन्दता का नितान्त अभाव है; जैसे वाटिका के समस्त कुसुम को खिलते ही किसी ने तोड़ लिया हो, जैसे कामना का मादक विलास किसी ने जकड़ कर निष्क्रिय कर दिया हो; जैसे अज्ञात–भाव से परिबद्ध होकर चेतना सुलझने के प्रयास में और भी उलझती जा रही हो।

''तुम कौन? हृदय की परवशता?
सारी स्वतंत्रता छीन रही,
स्वच्छन्द सुमन जो खिले रहे,
जीवन बन से हो बीन रही।''

अतिशय विलासों के ज्वालामुखी का विस्फोट प्रलय बनकर आया था जिसने 'आदि' नर–नारी को भीतर–बाहर प्रभावित किया था। अतः उसी आतंक से ओत–प्रोत हमारा जीवन वासना की तुष्टि मे लज्जा अनुभव करता है– एक प्रकार का बन्धन अनुभव करता है; और कभी हम समझने लगते हैं; चारों और हमारी हँसी हो रही है समाज में हम तुच्छ हो गए हैं। यह हम क्या करने जा रहे हैं? यह प्रश्न ही क्यों उठता है जब मानव अपनी सहज–वृत्ति को ही तुष्ट करना चाहता है? क्यों ऐसा होता है–?

''सब अंग मोम से बनते हैं
कोमलता में बलखाती हूँ,
मैं सिमट रही–सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूँ।''

प्रसाद जी ने इसका ऐतिहासिक कारण दिया है उनके अनुसार लज्जारंति की ही प्रतिकृति है, जो अनुभव–रुप में शेष रहकर मानव–चरित्र का संचालन करती है और सौंदर्य की गरिमा देती है और उसे उस असमंजस–संत्रास से बचाती है–

''मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
मैं शालीनता सिखाती हूँ,
मतवाली सुन्दरता पग में,
नूपुर–सी लिपट मनाती हूँ।''

प्रसाद जी के अनुसार नारीतत्व दो भावों से निर्मित होता है, अर्थात लज्जामयी, श्रद्धामयी

इन दो के बिना नारी की कल्पना नहीं की जा सकती । इन गुणों को लेकर नारी पुरुष की अपेक्षा महत्तर है– वह शैलमाला से निःसृत होने वाली पीयूष–निर्झरिणी है, जो समस्त जीवन–भूमि को सिक्त कर उर्वर बनाती है–

''नारी? तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पगतल में
पीयूष–श्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।''

उसमें हिमालय के समान अविचल विश्वास है जिसमें तरलता भरने वाली लज्जा है। लज्जा से नारी का सौंदर्य बढ़ जाता है। मानव और प्रकृति के भिन्न–भिन्न रुपों में उन्होंने जिस सौंदर्य के दर्शन किये वह परम सत्ता के अखंड और निस्सीम सौंदर्य की झलक–मात्र है। उन्हें अनुभव होता है कि संसार का समस्त बाह्य सौंदर्य क्षणभंगुर है। बाह्य और नश्वर सौंदर्य के अंदर 'विश्वात्मा' का जो शाश्वत सौंदर्य है उसी की खोज में उनकी चेतना तल्लीन रहती है–

''क्षणभंगुर सौंदर्य देखकर रीझो मत, देखो! देखो !!
उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छायी है–''
प्रेमपथिक

विश्व में जो कुछ भी बिखरा हुआ सौंदर्य दिखाई पड़ता है वह सौंदर्य–सागर विश्वात्मा का अंश मात्र है–

''स्निग्ध, शांत, गम्भीर महा सौंदर्य सुधासागर के कण, ये सब बिखरे है जग में– विश्वात्मा ही सुन्दरतम है।'' इसी सौंदर्य–सुधासागर में पहुँचकर परमानंद का अनुभव होता है क्योंकि जो विश्वात्मा सौंदर्य का कोश है वही आनन्द का भंडार भी है। इस अनन्त सौंदर्य के दर्शन प्राप्त हो जाने पर जड़ और चेतन का भेद समाप्त हो जाता है, क्योंकि यहाँ एकमात्र चेतना का विराट रुप दिखाई पड़ता है–

''समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती आनंद अखण्ड धना था।''
कामायनी/आनंद सर्ग

प्रसाद जी ने सौंदर्य के दर्शन इसी रुप में किये थे। इसी रुप में सौंदर्य उनके लिए सत्य बन गया था। प्रसाद जी आदर्श सौंदर्य के उपासक थे। वे उसी सौंदर्य के दर्शन करना चाहते थे,

क्योंकि उन्हें विश्वास था उस सौंदर्य के दर्शन से ही जीवन–मुक्ति प्राप्त हो सकती है–

''प्रार्थना अन्तर की मेरी–यही जन्मान्तर की हो उक्ति।
जन्म हो, निरखूँ तक सौंदर्य, मिले इंगित से जीवनमुक्ति ।।
झरना/प्रार्थना

परंतु उस सौंदर्य के दर्शन तभी प्राप्त हो सकते हैं जब हृदय प्रशान्त हो जाए–

''बना लो अपना हृदय प्रशान्त
तनिक तब देखो वह सौंदर्य ।''

'प्रशान्त हृदय' से तात्पर्य जीवन में 'सामरस्य' प्राप्त करना है। जब तक 'समरसता' प्राप्त नहीं हो जाती तब तक अनन्त सौंदर्य के दर्शन नहीं किये जा सकते और न ही अखण्ड आनन्द का अनुभव हो सकता है। इसलिए प्रसाद जी ने प्रवृत्ति–निवृत्ति प्रेय–श्रेय, स्वार्थ–परमार्थ, लोक–परलोक, अहे–ढूढ़, व्यष्टि–समष्टि के सामंजस्य को अक्षय सौंदर्य और आनंद की अनुभूति का माध्यम बनाया। जब तक इच्छा, क्रिया और आनन्द का अनुभव होता है। जब तक जीवन में समरसता नहीं आ जाती तब तक प्रत्येक व्यक्ति 'मनु' की भाँति 'सौंदर्य–सुधा' से भी अपना 'गरल–पात्र' भरता रहता है। जैसे ही उसके जीवन में समरसता आ जाती है वैसे ही वह सौंदर्य को पहचान जाता है–

''उस दिन तो हम जान सके थे
सुन्दर किसको हैं कहते।''
कामायनी / निर्वेद सर्ग

जिस व्यक्ति के जीवन में समरसता आ जाती है उसे सम्पूर्ण सृष्टि सुन्दर दिखाई देने लगती है। ऐसी स्थिति में सौंदर्य वस्तु या पदार्थ का बाह्य गुण–मात्र नहीं होता, अपितु वह ईश्वरीय विभूति बन जाता है। मानवीय और प्राकृतिक सौंदर्य दिव्य शिल्पकार (परमात्मा) का ही कला–कौशल है–

''मानवी या प्राकृतिक सुषमा सभी,
दिव्य शिल्पी के कला–कौशल सभी।''
कानन कुसुम/सौंदर्य

इस सौंदर्य की अनुभूति से साक्षात्कार करा देती है–

''देख लो जी–भर इसे देखा करो,
इस कलम से चित्त पर रेखा करो।
लिखते–लिखते चित्र वह बन जायेगा,
सत्य–सुन्दर तब प्रकट हो जायेगा।।''

प्रसाद सौंदर्य के इस अपार्थिव और शाश्वत रुप के सधे आराधक थे।

प्रसाद के साहित्य में पार्थिव रुपों की झांकियाँ भी बहुत है। कभी–कभी आश्चर्य होता है कि रुप–जालों में उलझी हुई प्रसाद जी की चेतना सौंदर्य के दिव्य और उदात्त रुप की ओर कैसे अग्रसर हुई होगी। परंतु यह आश्चर्य उस समय दूर हो जाता है जब हम उनकी चेतना के विकास को उनकी काव्यधारा के साथ देखते हैं। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में वैभव और विलास से मण्डित सौंदर्य के चित्र अधिक हैं, यद्यपि कवि में सौंदर्य–स्त्रोत के साथ चित्र–दर्शन की उत्कंठा 'झरना' और 'कानन–कुसुम' में अल्प रुप में, 'लहर' में एक झलक के रुप में और 'प्रेमपथिक' में अधिक स्पष्ट रुप में दिखाई पड़ती है, जो 'कामायनी' में पहुँचकर ही शान्त होती है। लेकिन, यहाँ यह भी नहीं कहा जा सकता है कि– पिछली रचनाओं के कवि की तृषा यहाँ आकर बिलकुल शांत हो गयी है।

'आँसू' में कवि में लौकिक सौंदर्य को पान करने की अधीरता, व्याकुलता और पीड़ा दिखाई देती है। यहाँ लौकिक सौंदर्य को अलौकिक परिधान में वेस्ठित करने का उपक्रम किया गया है–

''माना कि रुप–सीमा है, सुन्दर! तव चिर–चौवन में
पर समा गये थे, मेरे मन के निस्सीम गगन में ।''

लौकिक सौंदर्य के चित्रों को प्रसाद जी ने इस रुप में रखा है कि उनमें कहीं कभी भी वासना की गंध नहीं आती और न ही उनमें अश्लीलता की छाया दिखाई पड़ती है। यौवन की भावनाओं से प्रेरित होकर भी उन्हौंने जिन चित्रों को अंकित किया है उनमें कहीं भी रीतिकालीन स्थूलता और मांसलता दिखाई नहीं देती ।

''तुम कनक–किरण के अन्तराल में,
लुक–छिप कर चलते हो क्यों?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन, रस कन ठरते।

हे लाज भरे सौंदर्य! बता दो—
मौन बने रहते हो— क्यों?''

चंद्रगुप्त मौर्य / प्रथम अंक

प्रसाद में सर्वत्र ऐसी सूक्ष्मता दिखाई पड़ती है। उन्हौंने रीतियुगीन सौंदर्य के चित्रों पर चढ़ी हुई वासना की धूल को पोंछा, उनपर से स्थूलता की पर्त्त को हटाया और उन चित्रों को अपनी कल्पना के ऐसे नये रंगों से सुसज्जित किया, जिन्हौंने प्रसाद जी के रुप को चित्रकार बना दिया। उनके चित्रों की बहुत अनुकृति की गई, परंतु कोई भी चित्रकार उनको स्पर्श तक न कर सका। हिन्दी साहित्य में ही नहीं, विश्व—साहित्य में भी रुप—सौंदर्य का उन जैसा चित्रकार कोई ना हो सका। 'कामायनी' में श्रद्धा के रुप—सौंदर्य का जो वर्णन किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उस वर्णन को पढ़कर अनुमान लगा सकते हैं कि प्रसाद जी की सौंदर्य—चेतना कितनी प्रखर और विकसित थी। श्रद्धा के शरीर का तो इतना सूक्ष्म वर्णन किया गया है, जिसमें मानस—पटल पर सौंदर्य के समस्त प्रभाव को अंकित करने की पूर्ण सामर्थ्य है।

'कुसुम कानन—अंचल में मन्द,
पवन प्रेरित—सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग—शरीर,
खड़ा हो ले मधु का आधार।''

कामायनी

उस शारीरिक सौंदर्य में जितनी सूक्ष्मता, कोमलता, मधुरता और शुभ्रता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रसाद जी की सौंदर्य—चेतना की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि वे कहीं भी वासना की तरंग को उठने नहीं देते।

प्रसाद ने मानवीय सौंदर्य के वर्णन में सर्वत्र पवित्रता और दिव्यता पर दृष्टि रखी है।—

''ज्योत्सना—निर्झर! ठहरती ही नहीं यह आँख''

कामायनी

बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा उन्हें आन्तरिक सौंदर्य ही अधिक प्रिय है। रीतिकालीन कवियों की भाँति रुप—सरोवर की उपरी सतह पर ही नहीं लगी रहती अपितु वे इस सरोवर के अंदर बैठकर भाव—रत्नों की भी खोज करते हैं। उनकी 'श्रद्धा' का रुप जितना सुन्दर है उससे बढ़कर उसका हृदय सुन्दर है। उनका बाह्य सौंदर्य हृदय के सौंदर्य की अनुकृति मात्र है। इसी को 'शील का सौंदर्य'' भी कहते हैं। 'श्रद्धा' का 'मनु' के प्रति निःस्वार्थ समर्पण श्रद्धा के आन्तरिक सौंदर्य का परिचायक है, जिसमें भाव—सौंदर्य, शील—सौंदर्य और कर्म—सौंदर्य की अद्‌भूत छटा दिखाई पड़ती है—

''दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिता लो अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्ननीधि स्वच्छ,
तुम्हारे लिए खुला है पास।''

—कामायनी

प्रसाद का सौंदर्य—बोध बहुत ही गंभीर और व्यापक था। इसलिए उनकी दृष्टि से सौंदर्य का एक कण भी न बच सका। जहाँ उनकी दृष्टि व्यापक मानवीय सौंदर्य पर जाती है वहाँ वह मानव की सहचरी प्रकृति के सौंदर्य का भी पान करती है—

''उषा अरुण प्याला भर लाती सुरभित छाया के नीचे,
मेरा यौवन पीता सुख से अलसाई आँखें मींचे।''

कामायनी / निर्वेद सर्ग

प्रारंभ से ही उनके काव्य में मानव के साथ प्रकृति दिखाई पड़ती है मानव और प्रकृति—सौंदर्य में उन्हौंने प्रारंभ से ही सामंजस्य किया। मानव—सापेक्ष प्रकृति में उन्हें मानवीय सौंदर्य का ही रुप दिखाई देता है—

''बीती विभावरी जाग री!
अम्बर—पनघट में डुबो रही—
तारा—घट ऊषा नागरी।''

—लहर

प्रकृति के इन रुपों में भी नारी के रुप को ही प्रधानता मिली है।

मानव और प्रकृति के सामंजस्य पर प्रसाद जी ने इतना बल दिया कि प्रकृति मानव के सुख में हर्षित और ठसके दुख में दुखी दिखाई पड़ती है। प्रकृति मानव का साथ कहीं भी नहीं छोड़ती। इसीलिए प्रकृति—सौंदर्य का उपयोग उन्हौंने अलंकार पृष्ठभूमि, उपदेश और प्रतीक आदि उनके रुपों में किया। प्रकृति में उन्हें मानवीय सौंदर्य दिखाई देता है, मानवीय सौंदर्य में प्रकृति सौंदर्य—

''सोने की सिकता में मानो कालिन्दी बहती भर उसास;
स्वर्गगा में इन्दीवर की या एक पंक्ति कर रही हास।''

कामायनी / ईर्ष्या सर्ग

प्रसाद प्रकृति की रमणीयता पर मुग्ध तो होते हैं; परंतु कभी–कभी उसकी रमणीयता के विषय में जिज्ञासु होकर प्रश्न भी कर बैठते हैं। 'कामायनी' के प्रारंभिक पृष्ठों में ऐसे वर्णन अधिक हैं। प्रकृति–सौंदर्य उनके लिए रहस्यमय आवरण बन जाता है, जिसके पीछे अनन्त सौंदर्य छिपा है–

''उस असीम नीले अंचल में देख किसी की मृदु मुसक्यान,
मानो हँसी हिमालय की हैं फूट चली करती कलगान।''
कामायनी/ आशासर्ग

प्रसाद प्रकृति के सौम्य रुप पर ही नहीं, शुष्क एवं उग्र रुप पर भी सौंदर्य की झलक देखते हैं। वे उन भोगलिप्सु कवियों में नहीं है, जो उसके केवल एक रुप पर ही मुग्ध होते हैं। मधुचर्या और अतृप्ति के कवि प्रसाद जी ने सौंदर्य को सर्वत्र अखण्ड, व्यापक और समग्र रुप में देखा है। इसीलिए 'कामायनी' के 'प्रलय–वर्णन' और 'देवदारुओं' में भी उन्हें सौंदर्य के दर्शन हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद जी ने एक अभिनव सौंदर्य लोक का निर्माण किया। सौंदर्य का कोई भी क्षेत्र उनके स्पर्श से अछूता ना बचा। प्रसाद जी ने जिस सौंदर्य का निर्माण किया वह लोक–चेतना और लोक–कवि को भी बहुत प्रभावित किया। उनकी सौंदर्य–चेतना का ही प्रभाव है कि हम सौंदर्य को सत्य और शिव से पृथक नहीं देखते। उनकी चेतना की भिन्न–2 तरंगों में एक ही अन्तर्धारा प्रवहमान है– सौंदर्य की धारा/ प्रसाद जी के समस्त–साहित्य का जीवन–तत्व सौंदर्य की ही है। प्रसाद के लिए सौंदर्य ही कर्म था, सौंदर्य की धर्म था। उनके काव्य और जीवन का उद्धेश्य सौंदर्य ही था। उनकी चेतना सर्वत्र सौंदर्य का ही संचय करती थी।

वस्तुतः प्रसाद संसार के महान् सौंदर्य वादी कवि थे जो किसी संचारी भाव को गंभीरता का विषय न बनाकर लज्जा तत्व को अपनाया–

''मैं जभी तौलने का करती
उपचार, स्वयं तुल जाती हूँ;
भुजलता फँसाकर नर–तरु से
झूले से झोंके खाती हूँ।''

यह स्थिति प्रेमजनित है तो लज्जाजनित भी है। प्रेमकला और लज्जा एक रुप है नाम मात्र का अंतर है। अंत में हम कह सकते हैं कि व्यावहारिक पक्ष के जितने मनोरम अंश हो सकते है; उन्हें रेखाओं में समेटकर महाकवि प्रसाद जी ने एक अमिट चित्र प्रस्तुत किया है, उसे मानवाकार उपस्थापित किया है जो दृश्य–अदृश्य रुप में साकार होकर आती है जादू का आलिंगन देकर आवृत्त कर लेती है; वह 'सुषमा' को उच्छृंखल होने से रोकती है। प्रसाद जी के ही शब्दों में लज्जा और सौंदर्य का समन्वय इस प्रकार है–

''धूमिल रेखाओं में सजीव
चंचल चित्रों की नव–कलना।''
×××
''चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हलकी–सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।''

कहानी

चंपा का दर्द

अजीत कुमार
शाहकुंड, अकबरनगर
भागलपुर, बिहार

मंदार के मस्तूल पर वासंती वसनों में लिपटी ।तरूणी चुप चाप बैठी है । रंग–बिरंग के पुष्प सुमन विहँस रहे थे। फूलों की सुषमाओं में लिपटा प्रांगण मनोहारी हो उठा था । शहरी कोलाहल से अति दूर दृश्य अपने ढंग से पहचान बनाने की कोशिश में व्यस्त है। कहीं सेमल और पलाश के लाल टुह–टुह फूल संग पुष्पीय लताएँ मंद हवा संग लचकती उठती डालियाँ, कुछ कहने को व्याकुल है।

रात्रि कालिमा से सना अकाश में मंद–मंद मेध छाये थे ।हवा मन्द–मन्द हवा मन्द–मन्द वह रही थी। एक्का–दुक्का तारे कहीं–कहीं नजर आ रहे थे ।चाँद को बादल अपने परिमल आँचल में ले चुप थे। चाँद को बादल अपने परिमल आँचल में ले चुप थे ।इसी बीच एक पतली सी रेखा रह–रह छिटक जाती ।लगता बादल की चोरी छिपे काली करतूत को छुप–छुप कर देख रहा हो। कभी–कभी घन गर्व से गुर्रा कर देखते ।फिर दहाड़ कर गरजते ।ऐसे टक्कर से भू प्राणी काफी डरे सहमे थे।

भरूकवा तारा उग चुका था। झम–झम कर वर्षा की बूँद एका–एक बरस चली गयी। पर बूँदी स्नान से सभी खुश थे। अब नमीय बादल धीरे–धीरे छंट रहा है ।चन्द्रमा अपनी ज्योत्सनाओं से श्रृंग पर पसरे शोभा को लुक–छिप निहार फिर वादलों में मुँह छिपा गुम हो जाते। ऐसे आँख मिचौली का सात्विक आनन्द में वनीय प्राणी भी खुश थे।

हवाओं के बासंतिक फिजाओं में गन्ध, सुगंध, तरंग भी गतिमान थे । सुबह का शमागमन के स्वागतार्थ उषा वासंतिक चंमाई वसनों में अधरों पर थिरकती मुस्कान लिए प्रतिज्ञारत थी फिर तो आलोक के आते ही खुशी से बिह्वल हो उठी।

उधर श्रृंग के मुंडेरे पर बैठे मौन तरूणी को शिशि–ज्योत्सना से स्नान करा वासंती वस्त्रों को पहना चुप थी। अभी भी घने लम्बे केश पाश से रह–रह कर स्यात बूँदें टपक रहा है। मौन तपस्पिनों के मुखमण्डल पर वात्सल्य जगत पति के लिए अपना स्नेहिल प्रेम देने को बेचैन नजर आ रही थी।

आस–पास विभिन्न पक्षियों की तानें सुनाते आकाश मे कतार से उड़ते जा रहे थें। जो सबों को बरबस आकर्षित कर रहा था। मेषीय झुण्ड अभी भी इधर–उधर घूम रहे थे। पूर्वी क्षितिज को वरदायिनी माधवी रंग रोगन कर झटपट चली गई। माधव गौर से निहारा और रंग चढ़ा उर्जावान बना दिया।

पर्वतीय तरूणी के वास्ते अपने प्रांगण के विपिन आंगन में मांगलिक सुखों का इंतजाम कर मौन हो निहार रही थी। उसके नयनों में निरंतर सूक्ष्म प्रेम, जल सिंधु के तरेंगों से प्रस्फुटित हो रहा था। तरंगों पर बनती उर्मियाँ, दिव्य कक्षा से अवतरण लिए दिनमान का झलक पाने को बेचैन है।

उषा आगे बढ़ नभ–किसलय का खिलखिला कर मस्तकाभिषेक कर अभिवादन की। फिर किसी और के वास्ते आगे का मार्ग प्रशस्त कर स्वयं हट गई ।

नि:संकोची बालक भव सिंधु से निकल आँखें खोल देखे तो वह चकित हो उठा ।सामने शांत क्लांत रमणी तपस्विनी पर दृष्टि गड़ा दी। इससे वह चंपई सुवर्ण बन गई। दिनमान तरूणी को निहार आँखें मींच–मींच कर देख बढ़े जा रहे थे।

तरूणी अभी भी मौन के नि:शब्द चादर से ढ़ंकी वुत

पड़ी थी । अब रहा नहीं गया। दृष्टि गड़ाने से उसका मुखमण्डल दमित हो स्वर्णमयी हो उठी। ऐसे में मुरझाये पर्ण–कुसुम भी उस आलौकिक दिव्य सत्ता से जुड़ भाषित हो उठा। दैदीप्यमयी तरूणी शीश सा सुन्दर शीतल व संवेदनशील हो उठी।

प्रकृति अभी भी नैसर्गिक परिमल आंचल से झांक मुस्कुरा रहा था। ब्रह्मानन्द की सुखद अनुभूति से तृष्णा समविलुप्त हो गयी थी।

ऐसे पल में दिनमान तंत्र योग से तरूणी पर पूर्ण समर्पण हो पूछा, तुम कौन? बाला अभी भी साधना की तपश्चर्या में निमग्न पड़ी थी, अब और वक्त को खोना न चाहा ।उसके मौन पर झुंझला उठे, फिर दूर खड़ा पवन मुँह पर ऊँगलियाँ रख चुप रहने का इशारा किया। फिर एक लम्बी सांस खींच कोमलांगी के उभरे उरोजों पर फेंक दिया। इससे वो गरमी का अनुभव कर धीरे से पलकें खोली। आगे दूर–दूर तक गिरि–श्रृंखलाओं का शिला–खण्ड फैला है। कहीं–कहीं पादप, लताएँ, तृण पुलकित एवं रोमांचित हो उठे थे।मुकुट मञ्जरियाँ से अलंकृत वसु और भी....

तरूणी धीरे से मौन की तंद्राओं को तोड़ एक सांस खींच अंगेठी भरी। फिर अपने महत्वकांक्षा की पूर्ति निमित रवि तरूणी का नख से शीख मुखमण्डल पर लहरे केश का वर्णन सुना डाले।बड़प्पन सुन ज्योत्सना मधु श्रावणी का मुख मान कर एक मुस्कान ओठों पर बिखेर दी। जो तृप्ति का माधुय था। इससे लौकिक जगत में समृद्धि वं सामूहिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो उठा।इस विचित्र पहेली को देख पर्वतीय सीने को फाड़ उपत्यिका निकल बोली – बहन! उसके चमक–दमक में न फंसना।समय पर नजरें पड़ते ही मुँह घुमाकर बोली वासना की जहरीली हवस बनाने में माहिर है सो में भटका रही हूँ। इतना कह प्लावित आँखें छलछला पड़ी। मेरा भी खब्वाब था कि स्वतंत्र घुमन्तु बन ऐश अराम की जिंदगी बिताऊँ पर, वो जर्जर भिखारी बन पेट–पीठ एक हो पड़ी। अतः सोच समझकर ही उसके साथ कदम मिलाना। समझी बहन!

अभी–अभी प्रकाश के दिव्यकक्षा से आलोक भरता, मंदार के प्राकृतिक स्वरूप को बाहुपाश में भर देवी को देखा।वो भी ऐसे क्षण को पा, पुरूषार्थी पर मुग्ध हो गई।उसे स्पर्श कर पूछा तुम कौन? स्नेहिल सरस हो बोल! मैं तुम्हारी अंग की चंपा हूँ।अंक भर कर तो देखो।

अरूण चंपा का नाम और शोभा देख बाग–बाग हो गये।फिर वागबान पर नजर फेर कहा मैं तुम्हारा दिव्य कुमार ठहरा। फिर चंपा खिलखिला पड़ी। महर्षियोगनी की भाँति रोमांस से सस्नेह झन–झना उठी।फिर तो अंजनी अपने सुख अंञ्जली से स्वर्ण कण की पुष्पांजली से सलिल बना दी।अब कोमलांगनी, कमला सना ने भीनी–भीनी सुगंध से वातावरण को सुगंधित कर दी। हल्का–हल्का स्निग्ध श्वेत प्रकाश में कमल पत्र्क्ष पर पदूमिनी एक विराट सत्ता की प्रेमिका बनी झलकती प्रतीत हुई। उसे देखने कुमुद कुमुदनी अंतरंग से सृजन का भाव लिए आशीर्वाद दे डाली। पुरूषार्थी उसे उठा अनन्त अन्तार यात्रा में शामिल कर चरैवेती–चरैवती हो गये।

समय बदला। परिस्थितियाँ करवटें बदली। ज्ञान विज्ञान ने आज अंगीप चंपा को भूला दिया ।आज मतलब निकाल उससे सभी मुँह मोड़ चुप है।

आज चंपा अपने पश्चाताप की अग्नि में तील–तील जल रही है।वसु के मनु–पुत्र की नजरें चंपा पर जैसे ही पड़ी। उसे पाने वेताब हो गये।वैज्ञानिक ज्ञान से मुझे उस पुरूषार्थी से बहका कर पहले दैहिक शोषण किया। मन न भरा तो मेरी कमलीनी मांसल शरीर को गुदगुदा कर योजना द्वारा मुझे वे नंगन कर वो कल दी...

पवन चंपा की हालत देख फिर पड़ा फिर तो देखने

वालों की भीड़ लग गई। अंबुज सिंधु से अंजली में जल ले पीलायी। इससे वह होश में आयी। इससे सूक्ष्म प्रकृति संवेदनशील हो गई। बोली चंपा की जीवन कलंकित हो गयी है। चाहत वेपर्द हो मिट्टी पलीद हो गई। आज भी किसी न किसी रूप में नारी भोग्य ही है। पवन तपाक से कहा– चुप रह परिवर्त्तन के दौड़ में नारी की मानसिकता बदल गई। तूँ सब कुछ कर सकती है। इस पर चंपा आँखें तरेरी – प्रेम के प्रमाद में सृष्टि छलनी को विध्वंस के कारागृह में डाल प्रफुल्लित हो रहे हो मनु। पवन ने कहा सृष्टि सह धर्मिणी आज सिर्फ बलात्कार से ही कलंकित नहीं है। वो गलियाँ–गोलियाँ से छलनी की जा रही हैं। कोख उजाड़े जा रहे हैं और बोलते–बोलते थक जाती है। फिर छाती में मुक्का मारते बोली ठीक ही उपलका ने कही थी कि जो एक बार देहरी से कदम बाहर निकाली कि भिखारिन बन जीने को मजबूर हो जायेगी।

अभी भी चंपा के चेहरे पर भय और आतंक का भूत दिमाग में छा सिसक उठती ह।

कविता

एकान्त के अन्धेरे में

दिव्या शुक्ला
बी.1/24 विनय खंड
विधायकपुरम, गोमतीनगर
लखनऊ–226010

एकान्त के अन्धेरे में पीड़ाओं के विलाप
पलकों से पसीजे
भोर में भैरवी की धुन
फिर थिरक गई अधरों
पर मुस्कान ....
विडम्बनाओं के
झूले में झूलता मन
धूप छाँव सा
मंद गति से
खिसकता जीवन
जब अपनी ही परछाईं
को पकड़ने का निरर्थक प्रयास लगा रहता
तब झाँक जाता है
अट्टहास में छुपा विलाप....।

समीक्षा

जनवाद के नवल कंठ
अरूण कमल

डॉ0 आलोक प्रखर
शोधार्थी शांति निकेतन वि0 वि0
पश्चिम बंगाल

अरूण कमल समकालीन हिंदी कविता के एक कद्दावर कवि हैं। वजनदार कवि हैं। उनकी कविता वर्तमानदौर में, अपना केन्द्रीय चरित्रा एवं पहचान रखती है तथा समय की सत्ता और इयत्ता का भंजन करती है। वे घोर मानवातावादी कवि हैं, तभी तो उनकी कविता मानवता के शंख को एक बार नहीं महाशंख बार फूँकती है। उन्होंने साहित्य की कई विधओं को अपने अरूणाभ से रचा है, रंगा है। उसे समृद्धि दी है। लेकिन, उनका असल धर कविता में ही बसा है। उनकी लेखन–यात्राा का समारंभ सन् 1980 ई. के आस –पास शुरू होती है और देखते–देखते उनकी कलम छा जाती है। पाठकों एवं रसज्ञों के मिज़ाज पर उनका कविताई रस चढ़ने लगता है। अब तक उनके पाँच काव्य –संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं – ''अपनी केवल धर'' (1980); 'सबूत' (1989); 'नए इलाके में' (1996); 'पुतली में संसार' (2004); 'मैं वो शंख महाशंख' (2012)। सन् 1998 ई में 'नए इलाके में' काव्य –रचना के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिल चुका है।

वे मूलतः जनवाद के नवीन स्वर है। जिन्होंने मार्क्स के केंचुल को अपने हिसाब से नथ कर पहना है। मार्क्स उनके लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का कोई खूँटा नहीं है, वरन् उनका 'जनवाद' जनता की पीड़ा से उपजी उच्छल तरंग है जिसे उन्होंने अबतक आर्तभाव से पीया है। उसी को उनकी कविता जी रही है। इस नजर से वे दल मुक्त कवि है। वादों के विवाद से मुक्त कवि है। वे वादी नहीं प्रतिवादी हैं। लेकिन उनकी कथन भंगिमा बड़ी शीतल है। वह उत्तेजना से दूर है। उनकी कविता बगावती तेवर अख्तियार नहीं करती, लेकिन अपने भीतर ज्वालामुखी का आक्रोश छिपाये रहती है। जनता के लिए उनकी कविता आठों पहर साँसें भरती हैं। जनता के लिए वह चौंक–चौराहे पर मुठभेड़ करने के लिए उपस्थित रहती है। उनकी कविता उन्हीं शंख–महाश ंखजनों के लिए मुँह खोलती है जिन्हें हर जनगणना के वक्त भुला दिया जाता है। जिनके साथ राजनीति और इतिहास ने सदा सौतेला व्यवहार किया है। इतिहास और राजनीति की उसी दुरंगे चरित्र की जाँच–पड़ताल करती है, उनकी कविता इस अर्थ में वे बड़े मिजाजदाँ रचनाकार हैं। जिनकी अर्थवान कविता वक्त को हथकड़ियाँ पहनाती हैं। एक सच्चा कवि, एक टिकाऊ कवि समय के स्पंदन को बड़ी कान लगाकर सुनता है। उनकी कविता एक ऐसा आईना है, जिस में समाज की खुरदरी एवं बदरंग हकीकत को साफ–साफ झांका जा सकता है। वक्त की चक्कियों ने जिन्हें पीस दिया वहाँ उनकी कराह को सुनी जा सकती है। सही मायने में उनकी कविता उन्हीं उपेक्षित एवं तिरस्कृत जनों का पुण्य –स्मरण कराती है जो राजनीति एवं इतिहास द्वारा पग–पग ठगे गए हैं। ''मैं वो हूँ जिनकी गिनती होने से रह गई कहकर अपने क्षोभ को प्रकट करते हैं और अपनी बात सत्ता व शासन के बहरे कर्ण–कुहरों तक पहुँचाते हैं। उनकी रचनात्मक संवेदना इतनी प्रबल है कि वे खदकते अदहन की खदखदाती चेतना के विषम राग तक को सुन लेते हैं, जिनके नाम पर उस अदहन में कनमा भर भी चावल नहीं डाला जाता। विषमता के इसी विष–बिंदु पर अंगुली धरती है – उनकी 'जनगणना' शीर्षक कविता किसी को मालपुआ तक पसंद नहीं और किसी को आटे का चोकर तक नसीब नहीं। विषमता का यही विष–द्वंद्व है। गैर बराबरी की इन्हीं लकीरों को खरोंचती। ये पंक्तियाँ – ''मैं वो हूँ जिस की गिनती होने से रह गई पूरी आबादी में जो एक कम होगा वो मैं हूँ।'' जिस के वास्ते किसी अदहन में डाला नहीं जाएगा चावल जिस के नाम की रोटी नहीं पकेगी वो मैं हूँ। टके स्वर में सच कहा जाए तो 'जनगणना' उनकी एक ऐसी युगजयी रचना है जिसे उन्होंने हिंदी पाठकों को 'सोनार–उपहार' के रूप में भेंट की है और जिसकी दमक समय की चिलचिलाती धूप में भी मंद नहीं पड़ सकती। समकालीन दौर में शायद ही इस टक्कर की कोई और लघु–रचना हिंदी साहित्य में मौजूद हो जो इस के मुकाबले खड़ा होने का वोज़ जुटा पाता हो। तल्ख अंदाजी व लोकप्रियता के मामले में उनकी यह लघु रचना बाबा ''नागार्जुन'' की ''अकाल और उस के बाद'' कविता का पुण्य –स्मरण कराती है। उनकी यह रचना बड़ी जोर देकर सामाजिक

विसंगतियों की गहराई में उतरती है और बड़ी बारीकी से उसकी जाँच–पड़ताल करती है। सामाजिक सत्य को खुरच–खुरच कर उद्घाटित करती है। शंख महाशंख जनों के नाम पर हँसते आँकड़ों की दंतुरित मुस्कान को दिखाती ये अवलोक्य पंक्तियाँ – ''मैं हँसूँगा आँकड़ों के पीछे से तालियाँ देता वो मैं हूँ मैं वो अंक वो शंख महाशंख।'' अरूण जी की सारस्वत – प्रतिभा का पूर्ण प्रकाश 'जनगणना' शीर्षक कविता में खुलकर दमक उठा है जो उन्हें

शंख–महाशंख जनों का सच्चा एवं संवेदनशील कवि घोषित करता है। उनकी यह अकेली लघु रचना हीं उन्हें समय के शिलालेख पर खुदवा सकती है। अदना–सा लगने वाला प्रसंग भी समकालीन कवियों के यहाँ गंभीर मुद्रा धर कर आती है और बड़ी चतुराई से, हल्के–फुल्के अंदाज में अपने अंतर्ताप को दग्धकंठ से कह जाती है। वे अपनी कविता के लिए कहीं दूर से कौड़ी चुनकर नहीं लाते वरन् अगल–बगल की घटनाओं से ही मुद्दा तलाशते हैं। उनका कविताई मन समाज को कई कोणों से कई बार हेरती है, तब जाकर टके कंठ में अपनी बात कहती है। ''एक भक्त का संवाद'' कविता के माप र्फत कवि ने समाज के धर्म–प्राण जीवन में फैल रहे नोनछँहीं रोग पर कसैला वार किया है जो भक्तजनों के धार्मिक विश्वासों को शनैः शनैः चाट रही है। उनकी आँखें उसी धुँध को तलाशती है, जिस ने समाज के मानस को युगों से घेर रखा है। उनकी रचना उसी अंतर्व्याधि पर अँगुली रखती है। जिसने समाज की प्राणचेतना को जड़ बना दिया है। उसकी प्राणनाड़ी को सुन्न कर दिया है। आज कल मठ–मंदिरों में, प्रभु दर्शन के नाम पर भक्तों की श्रद्धा और विश्वास को किस कदर छीला जा रहा है, छला जा रहा है। यह देखना हो तो मठ–मंदिरों में ठाँव–कुठाँव विराजे इन दान पेटियों के भीतर से खनकते सिक्कों की झनकार में सुना जा सकता है। धन उगाही के गोरख धंधे के पूरे व्याकरण को पढ़ा जा सकता है जो श्रद्धालूओं के श्रद्धा–शास्त्रा को धीमे–धीमे कर चाटे जा रही है। श्रद्धावनत आँखों प्रभु को चहुँओर हेरती हैं। कोने–कोने में, कण–कण में – छानती हैं। पर, प्रभु के दर्शन नहीं होते। धर्मिकता की आड़ में जवान होतीं इन्हीं दुर्व्याधियों की चीर–फाड़ करतीं ये पंक्तियाँ–''मंदिर के कोने–कोने में गर्भगृह के चौखट तक परगे हैं दाताओं के नाम पट्ट। मैं तो तुम्हारे दर्शन को आया था प्रभु, और ये मैं किनका नमन करने लगा यह कैसी भक्ति है प्रभु, कैसा विनय।'' उनकी कविता समय से संवाद करती है तथा मानव के खण्डहर होते अंतस् लोक का जीर्णोद्धार करने का प्रयास करती है। अरूण जी यथार्थजीवी रचनाकार हैं। जन मन के कवि हैं। शंख महाशंख जनों के युग–कंठ हैं। यथार्थ की कठोर दुर्भेद्य भूमि को फोड़–फाड़कर ही उनकी कविता कुछ नमी पाती है और आमजन के लिए अहम भाषा में अंकुरण का उजास रचती है। आमजन की स्वप्निल हसरतें यथार्थ के पिंचड़े में सदैव कैद रहती है। कवि परिस्थितियों का दास बने रहना पसंद नहीं करता, वह तो जंग लगी व्यवस्था का विरोधी होता है। परिस्थितिजन्य उन्हीं जंजीरों को खोलने का प्रयास है – उनकी कविता जिस पिंजड़े में आमजन की स्वप्निल हसरतें फड़–फड़ाकर दम तोड़ देतीं हैं। यथार्थ की तेजाबी बारिश में उनकी सारी आशाएँ और आकाक्षाएँ खद–खदाकर धुआँ हो जातीं हैं और एक छोटी–सी अदना इच्छा भी पूर्ण नहीं हो पातीं। ''इच्छा थी'' शीर्षक कविता उसी युग–सत्य को वाणी देती है। एक आम आदमी के लिए दो कौड़ी की इच्छाओं को भी पूरा करना किस कदर भारी है। उसीका इस्पाती दस्तावेज बनती है। उनकी उक्त कविता। वह न तो ''एक गाय'' रख पाता है और न ही ''मेंहदी के अहाते वाला'' घर ही यथार्थ जीवन में सजा पाता है और न ही घर के बाहर ''बेत की कुरसी'' ही सज पाती है और न ही यथार्थ के उपवन में बाड़ी झाड़ी के स्वर्णचम्पा खिल पाते हैं। आमजन की सारी हसरतें यथार्थ के धधकते अंगारों में जलकर राख हो जाती है। उनकी इच्छाएँ सपनों के गर्भ में जो वीर्य डालती हैं, वह यथार्थ की कोख तक आते–आते भ्रूणावस्था में ही दम तोड़ देती है। आम आदमी की भी एक छोटी–सी ख्वाहिश होती है कि उनके यहाँ भी रात–दिन सगे संबंधियों का रेला लगा रहे। आठोंयाम कलछुन में तेल कड़कड़ाता रहे। खुशियों की रंग–बिरंगी आतिशबाजियाँ होती रहे। गुलछर्रे दगते रहे। महल–दुमहल्लों के हर वातायन से कहकहे के स्वर गूंजे। लेकिन यथार्थ चुपके से उनके सपनों के पंखों को आकर कतर देती है, उसी को स्वर देतीं ये पंक्तियाँ –

''इच्छा तो बहुत थी कि एक घर होता मेहँदी के अहाते वाला। कुछ बाड़ी झाड़ी कुछ फल–फूल और एक गाय, बाहर बरामदे पर बेंत की कुरसी, बारिश होती धुआँ उठता तेल कड़कड़लोग बाग आते, बहन कभी भाई, संगी–साथी कुछ फैलावाँ रहता थोड़ी खुशफैली पर लगा मैंने ज्यादा चाह लिया, स्वप्न भी दास है यथार्थ के भूल गया।''

''न अपना घर होगा'' और ''न अपनी जमीन होगी''। फिर भी यह आसमाँ तो अपना है – इसी मंत्रवाक्य का जाप कर; एक गरीब–गुरबा अपनी जीवन की गाड़ी को यथार्थ की पटरी पर छुक–छुक कर खींचता चलता है। मन को ठण्डक देता चलता है। जीवन को यथार्थ के ईंधन से भरता रहता है। यह अमर बेल आसमाँ से कुछ संजीवनी पाकर हरा रहता है। हरियाली की वही दुधिया उजास भरतीं ये पक्तियाँ–

''खैर! जब इतना कट गया बाकी भी गुजर जाएगा। न अपना घर होगा न अपनी जमीन, फिर भी आसमान तो होगा कुछ न कुछ'' अरूणजी विराट् मन के कवि हैं। विश्व–भाव के पोषक हैं। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की उदात्त भावना के पालक हैं। माटी महिमा के गायक हैं। यही कारण है कि उनकी कविता हरेक उस तंग नज़रिये का मुखालफत करती है जो मानव–मानव के बीच जाति, धर्म तथा देश की अलंघ्य दीवारें खड़ा करतीं हैं। वे आज भले ही नगर प्रवासी हो गए हों लेकिन गरीबी की चौखट से उठने वाली हर 'आह–वाह!'' को उनकी कविता बड़ी शिद्दत से सुनती रही है और मुद्दतों से उनकी टीम एवं कसक को वे आवाज देते रहे हैं।

'दो प्याली चाय के वास्ते'' एक पुड़िया चीनी तथा बगल के घर से उधार के दूध की कीमत जाननी हो या फिर गरीबी से उपजे उस गर्म ताप को अनुभूत करना हो – तो शायद ही इस टक्कर की कोई और

कविता हिंदी में, वर्तमान समय में – मौजूद हो। उनकी कविता समय की खलबलाती–खलखलाती चेतना को धर देती है। अनुभव की गर्म भट्टी में पकाकर ही अपनी बात कहती है। दबे–कुचलों के प्रति, गरीब–गुरबों के प्रति उनके मन में घोर संवेदना है। वे मनस्त: उन्हीं के कवि हैं। उन्हीं के लिए जीते हैं। वे पुरातनता तथा गैर–बराबरी के हरेक उस ढूह को ढहा देना चाहते हैं। सारे मेड़ों को ध्वस्त कर देना चाहते हैं जो समाज में अछूते द्वीप को जन्म देती है। उन्हीं बेसहारों के लिए टेक बनती है – उनकी कविता। गैर–बराबरी की उन्हीं विषम छालों को छीलतीं ये दाँतीदार पंक्तियाँ –

''जब तक तुम लोगों को धर्म जाति या देश से जानते हो तब तक तुम कुछ नहीं जानते और आसानी से नफरत कर सकते हो पर ज्यूँ ही तुम किसी के करीब आते हो उस के घर जाते हो और देखते हो? उसकी चारपाई पर बिछी फटी हुई चादर किनारे दबी देखते हो कैसे उस ने दो प्याली चाय के वास्ते एक पुड़िया चीनी मँगवाई, और दूध बगल के घर से''। भले ही मानव की सीमा हो लेकिन मानवता की सीमा अंतहीन है। वह धर्म, जाति तथा देश की तंग बंदिशों में नहीं बंधता। वहाँ आकर सभी मेंड़ें भर–भराकर ढहने लगतीं हैं। सबों के घर–आँगन का दर्द एकमेक हो जाता है। उसी को स्वर देती ये पक्तियाँ –

''ज्यूँ ही तुम जानते हो कि वह भी तुम्हारी तरह कर्ज में डूबा है उस को भी एक बहन है ब्याहने को और वह कहता है हमारे यहाँ भी दहेज बहुत है। तब तुम भीतर–भीतर ढहने लगते हो सारी मेंड़ें गिरने लगती हैं।'' अरूण जी के पास एक विश्व पूजित भाव है। जो मुल्क की राजनीतिक बंदिशों में कभी कैद नहीं होती, वे उसी को लेकर जीने वाले कवि हैं। तभी तो वे कभी समुद्र में उफनती लहरों से कुछ उम्मीदें धरते हैं, तो कभी रेगिस्तान की तप्त रेत से अपने भीतर आशा का उजास रचते हैं। देश के हुक्मरानों ने भले ही मुल्क की सरजमीं पर राजनीति की जहरीली लकीरें खींच दी हैं। भारत और पाक का धड़ अलग कर दिया हो, लेकिन दोनों देशों की सांस्कृतिक फिज़ाँ का रंग एक ही है। जुबाँ की भाषा भी एक है। सिक्कों में भी वही खनक है। खेतों की हरियाली भी एक है। पतंग उड़ाते बच्चों के खिलखिलाते चेहरों में भी वही तरंगधैर्य है जो सरहद के इस पार है। उन्होंने मानवता के हरके उस दाने को विश्व क्षितिज के खुल आकाश में जी भर के छींटा है जो सारी धरती और सारे समंदर को एक कर सके। जो विभाजन की लकीरों को मिटा सके। इसी की मुहिम चलाती है। उनकी कविता। ताकि, हम एक विश्व आँगन में चहलकदमी कर सकें। फुदक सकें। उनकी उसी अंतर्वाणी को टेर देतीं येपंक्तियां –

''क्या मैं भी जिम्मेवार हूँ उन सब के लिए / जो जेलों में बंद हैं बेकसूर–वे मछुवारे, चरवाहे, बंजारे/कबीलों के चंचल नौजवान/क्या अपनी हुकूमत की हर करतूत के लिए / मैं भी हूँ कसूरवार मेरे दाता / कितना हँस –हँस कर मिलते है हुक्मरान एक दूसरे से / एक दूसरे की बीवियों को तोहफे बाँटते और हम निभाते है दुश्मनी / मैं तो चाहता हूँ सारी धरती सारे समंदर एक हो जाएँ और हम इस तरह से पृथ्वी पर टहलें जैसे अपने टोले में / एक आँगन से दूसरे आँगन''। अरूण जी वक्त की मिज़ाज को पढ़ने वाले कवि हैं। वक्त की उठती–गिरती लहरों के साथ उनकी कविता धर बदलती है। वह हमें आसन्न प्रसवा संकट से आगाह कराती है। मौसम के मिजाज को भाँप कर मुँह खोलती है। समाज एक धड़ा वह भी है जो आजू–बाजू की घटना से बेखबर है। वह अपनी गुलाबी दुनिया में कैद है। आठों हर गुलछर्रे उड़ाने में मस्त हैं। वहीं ठीक इस के इतर; समाज का वह जमात है जो राष्ट्र–रक्षा के नाम पर हिमालय से लेकर हिंद महासागर तक अपने प्राणों की आहुति छींट रहे हैं। ''क्या तुम जानते हो कि जब तुम सो रहे थे, तब कोई मरा जा रहा था छत्तीस गढ़, मणिपुर, कश्मीर में? क्या तुम जानते हो कि जब तुम खा रहे थे, तब कोई जान दे रहा था विदर्भ अबोहर मदुरै में? क्या तुम जानते हो कि जब तुम पढ़ रहे थे, तब तुम्हारे सटे कमरे में खून हो रहा था रात? उठो और देखो तुम्हारे किवाड़ पर भी सटा है पर्चा और बाकी जगहें खाली हैं इश्तहार में'' उनकी कविता सामाजि क अंतर्विरोधें के अंतर्ताप से उपजती और उबलती है। बहरहाल जो हो, उनकी कविता समय से एक खुली बहस है। वह खौलते हुए मुद्दों का हिसाब–किताब रखती है। भारत आज नक्स लवाद और आतंकवाद के जिस बारूदी ढ़ेर पर बैठी है, उसी को प्रश्नात्मक शैली में बड़े ताकवर ढंग से उठाती है तथा अपना रचना कर्म निभाती है। उनकी कलम और कविता, सही मायने में, उनशंख महाशंख जनों का प्रतिनिधित्व करती है जिनके सपने रोजी–रोटी की जुगाड़ में मर जाते हैं। जिनका सारा जीवन–ईंधन लकड़ी–पानी की तलाश में ही खर्च हो जाता है। उन्हें भला! सपनों के सतरंगी आकाश में जिंदगी के खूबसूरत पल गुजारने का अवकाश कहाँ! उन्हीं बेस हारों के लिए जीती और मरती है – उनकी कविता। भले ही, उनकी कविता तैश में भर बोलना नहीं जानती हो लेकिन बड़ी ही सहजता एवं सरलता के साथ समाज के दाहक प्रसंगों को उठाती है। उनके कथन का एक मुलायम अंदाज है, जो हारे हुए मन को बल देता है तथा मानवता के तंगपिंजड़े को खुला आकाश। उनका यही वैशिष्ट्य उन्हें कवि ज मात से अलग कर अप ने दौर का नामवर कवि सि द्ध करता है। लोक कल्य ाण के लिए उनकी कविता लखा–लखा बार झूठ बोलना प सं द करती है और ध रती का स बसे बड़ा झटका कहलाना पसंद करता है। ''हाँ मैं झूठा बोलूँगा मैं लाख बार झूठा बोलूँगा अगर इस से कोई अभागा एक दिन भी ज्यादा जिसके'' मैंने लगातार झूठी गवाही दी और हर बार एक बंदा फाँसी के फंदे से लौटा मैं पृथ्वी का सबसे बड़ा झुट्ठा होना चाहता हूँ। आमीन!! उनके इस काव्य –संग्रह के सदंर्भ में जो कुछ कहा जाए वह मेरी नजर में विश्व–भाव का 'बटराग' टेरती है तथा जनवाद को एक नवल कंठ देती है।

कविता

हे पार्थ!

ई. दीप्ति शर्मा
आगरा
मो0 : 09412526563

हे पार्थ!
मैं सिंहासन पर बैठा
अपने धर्म और कर्म से
अंधा मनुष्य,
मैं घृतराष्ट्र
देखता रहा, सुनता रहा
और द्रोपदी के चीरहरण में
सभ्यता, संस्कृति
तार–तार हुई
धर्म के सारे अध्याय बंद हुए,
तब मैं बोला धर्म के विरुद्ध
जब मैं अंधा था,
पर आज
आँखें होते हुए भी नहीं देख पाता
आज सिंहासन पर बैठा
मैं मौन हूँ
उस सिंहासन से बोलने के पश्चात
हे पार्थ
सदियों से आज तक
मैं मौन हूँ।

पुरानी डायरी से

शैलजा पाठक

पुरानी डायरी से
सूखे फूलों का बसंत
झर गया और
कह गया
लो आ गया ....

फिर आँख का काजल फिसल कर
गाल पर लहरा गया ..
लो आ गया ....

खेत का सरसों वो चुनर ख्वाब की
वो चुप से मुझे आकर अभी ओढा गया
लो आ गया ....

लो जागती आँखों को अपनी मूंद कर
मैं जानना चाहूँ कि क्या तू ख्वाब है
धत्त ये मेरा मन मुझे फिर
आज भी भरमा गया
लो आ गया ....

हाँ आ गया
हाथ में सूखी हुई तारीख का पन्ना
मुझे तड़पा गया .... हाँ आ गया

लघुशोध

सुभद्राकुमारी चौहान और राष्ट्रवाद

डॉ0 सुनिल कुमार परीट
बेलगाम, कर्नाटक
मो: 08867417505

राष्ट्रवाद और देशप्रेम सुभद्राकुमारी चौहान जी के रग–रग में भरा हुआ था। सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म इलाहाबाद में हुआ था। 15 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह खंडवा के वकील लक्ष्मण सिंह चौहान से हो गया था। पति–पत्नि दोनों ही राष्ट्रीय विचारधारा के होने के कारण महात्मा गाँधीजी से प्रभावित होकर, अपना घरबार त्यागकर स्वतंत्रता के आंदोलन में कूद पड़े। इसी लिए इन्हें कर बार जेल भी जाना पड़ा। दानों पति–पत्नि मन–प्राण से कांग्रेस का काम करने लगे। सुभद्रा महिलाओं के बीच जाकर स्वाधीनता संग्राम का संदेश पहुँचाने लगीं। वे उन्हें स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने, पर्दा छोड़ने, छूआछूत और ऊँच–नीच की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठने की सलाह देती थी। स्त्रियाँ सुभद्रा की बातें बड़े ध्यान से सुनती थीं। 1920–21 में मध्यवर्ग की बहुओं में प्रगतिशील मूल्यों का संचार करने में सुभद्रा ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई।

सुभद्राजी की कविताओं में देश प्रेम की भावना और मातृत्व ही मूल आधार है। उनकी कविता ''झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई'' के ''खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी...'' सुनकर आज भी हम देश भक्ति की भावना से हर्षित हो उठते हैं। सुभद्राकुमारी की कविता 'झाँसी की रानी' महाजीवन की महागाथा है। कुछ पंक्तियों की इस कविता में उन्होंने एक विराट जीवन का महाकाव्य ही लिख दिया है। इस कविता में लोकजीवन से प्रेरणा लेकर लोक आस्थाओं से उधार लेकर जो एक मिथकीय संसार उन्होंने खड़ा किया है उससे 'झाँसी की रानी' के साथ सुभद्राजी भी एक किंवदंती बन गई हैं। भारतीय इतिहास में यह शौर्यगीत सदा के लिए स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया है–

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी
बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।

इनकी भाषा सरल तथा शुद्ध खड़ी बोली है। देश के लिए कर्तव्य और समाज की जिम्मेदारी सँभालते हुए उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ की बलि चढ़ा दी–

न होने दूँगी अत्याचार, चलो मैं हो जाऊँ बलिदान।

'जलियांवाला बाग' (1917) के नृशंस हत्याकांड से उनके मन पर गहरा आघात लगा। उन्होंने तीन आग्नेय कविताएँ लिखीं। जलियाँवाले बाग में वसंत' में उन्होंने लिखा–

परिमलहीन पराग दाग–सा बना पड़ा है
हा! यह त्याग बाग खून से सना पड़ा है।
आओ प्रिय ऋतुराज! किंतु धीरे से आना
यह है शौक–स्थान यहाँ मत शोर मचाना।
कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा–खाकर
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर।

1922 का जबलपुर का झंडा सत्याग्रह देश का पहला सत्याग्रह था और सुभद्रा जी की पहली महिली

सत्याग्रही थीं। रोज़–रोज़ सभाएँ होती थीं और जिनमें सुभद्रा भी बोलती थीं। टाइम्स ऑफ इंडिया के संवाददाता ने अपनी एक रिपोर्ट में उनका उल्लेख 'लोकल सरोजिनी' कहकर किया था।

प्रसिद्ध हिंदी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने सुभद्रा जी के राष्ट्रीय काव्य को हिंदी में बेजोड़ माना है–
'कुछ विशेष अर्थों में सुभद्रा जी का राष्ट्रीय काव्य हिंदी में बेजोड़ है...।'

राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी और अनवरत जेल यात्रा के बावजूद उनके तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए– 'बिखरे मोती (1932), उन्मादिनी (1934), सीधे–सादे चित्र (1946)।

वह 'स्वतंत्रता' नहीं, 'स्वराज्य' चाहती है। परतंत्रता नहीं, स्वानुशासन चाहती है। रुढ़ियों–बंधनों से मुक्त होकर वह स्वनियंत्रण में रहना चाहती है। सुभद्राजी की सभी कहानियों को हम एक तरह से सत्याग्रही कहानियाँ कह सकते हैं। उनकी सत्याग्रही स्त्रियाँ हैं। दलित चेतना और स्त्रीवादी विमर्श को उठाने वाली सुभद्राकुमारी चौहान हिंदी की पहली कहानीकार हैं–

दिखा गई पथ,
सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।

पंद्रह अगस्त 1947 को जब देश आजाद हुआ तो सबने खुशियाँ मनाईं। सुभद्रा जी ने भेड़ाघाट जाकर वहाँ के खान मजदूरों को कपड़े और मिठाई बाँटी। उस दिन से अपना सिरदर्द भूल गई थीं, थकावट भूल गई थीं, आराम करना भूल गई थीं।

गाँधीजी की हत्या से सुभद्रा जी को ऐसा लगा कि जैसे वे सचमुच अनाथ हो गई हों। बगैर कुछ खाए–पिए चार मील पैदल ग्वारीघाट तक गईं। जैसे कोई उनके घर का चला गया हो। सुभद्रा जी ने कहा, 'मैंने तो सोचा था कि मैं कुछ दिन गाँधी जी के आश्रम में बिताऊँगी लेकिन परमात्मा को वह भी मंजूर नहीं था!''

सुभद्राजी की 'खिलौनेवाला' कविता में उनकी देशभक्ति उमड़ पड़ी है–

मैं तो तलवार खरीदूँगा माँ
या मैं लूँगा तीर–कमान
जंगल में जा, किसी ताड़का
को मारुँगा राम समान ।

कार दुर्घटना में सुभद्रा कुमारी चौहान का देहांत 15 फरवरी 1947 को 44 वर्ष की आयु में ही हो गया। एक संभावनापूर्ण जीवन का अंत हो गया ।

लोकवाणी

विज्ञापन एवं सदस्यता शुल्क रहित पत्रिका की पहुँच

46 देशों के सैकड़ों पाठकों तक

अभिनव अरुण
वरिष्ठ उद्घोषक,
आकाशवाणी, वाराणसी
9415678748

सर्वप्रथम ''संभाव्य'' के अपने प्रिंटिंग प्रेस के उद्घाटन के उपलक्ष्य में हार्दिक बधाई। पत्रिका के स्थायित्व, मुद्रण की सम्पूर्ण सुद्धता एवं मनवांछित आकर्षक साज सज्जा की दिशा में यह उपलब्धि मील का पत्थर है।

अपना प्रेस होने से ''संभाव्य'' साहित्य के उन्नयन में और प्रभावी भूमिका निभा सकेगा, ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए। अप्रैल 2014 अंक की प्रिंट प्रति नहीं मिली पर नेट पर उपलब्ध अंक को पढ़ा और पहले कि तरह ही नहीं वरन उससे भी सामग्री समृद्धि के सन्दर्भ में और सशक्त पाया।

भागलपुर से प्रकाशित पत्रिका अपने प्रकाशन के अल्प समय में ही राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुकी है यह हर्ष और संतोष का कारक है। इस हेतु संस्थापक सह प्रबंध सम्पादक श्री दयानंद जायसवाल जी, संपादक डॉ0 अश्विनी जी और संपादक डॉ0 जी0पी0 सिंह जी के अथक प्रयास की निश्चित ही सराहना की जानी चाहिए। उनके एवं इस पत्रिका के प्रबंधन–संपादन से जुड़े सभी सुविज्ञ जनों के लिए कोटि–कोटि शुभकामनाएँ। विज्ञापन एवं सदस्यता शुल्क रहित पत्रिका की पहुँच आज 44 देशों के सैकड़ों पाठकों तक है यह सुखद ही नहीं वरन स्तुत्य है और अनुकरणीय भी। जैसा कि पुरोवाक् में संस्थापक महोदय ने कहा भी है ''संभाव्य'' आत्मा के सरोवर में हलकी हिलोर की अनुभूति है जो असीम आनंद से एकाकार होने की दिशा देने में पूर्णत: समर्थ है और यही इसकी सफलता है।

अंक में डॉ0 दीपक शर्मा का लेख ''शिक्षा का अधिकार'' आज के हालात का सटीक विश्लेषण करता है, इस विस्तृत आलेख हेतु उन्हें हार्दिक साधुवाद। डॉ0 कलानाथ मिश्र ने साहित्यकार विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सन्दर्भ सहित रोचकता से प्रकाश डाला है। उमाकांत भारती की लघुकथा हेल्थ सेंटर सन्देश परक है।

डॉ0 प्रतिभा राजहंस एवं शतदल मंजरी की कहानियाँ आज के हालात की समीचीन अभिव्यक्ति हैं, दोनों अपने कथ्य शिल्प के जरिये पाठक को बाँधने में सफल रही हैं, बधाई। डॉ0 पारिजात ने युग प्रवर्तक व्यक्तित्व राजा राम मोहन राय पर रोचक ऐतिहासिक जानकारी प्रस्तुत की है।

कविताओं एवं गजलों के लिहाज से भी संभाव्य का यह अंक विविधता पूर्ण और प्रभावी बन पड़ा है। डॉ0 सुनिल परीट, डॉ0 रंजना जायसवाल, अशोक मिजाज, अनामिका, ब्रिजेश नीरज, अनंत आलोक और दीप्ति शर्मा प्रभावित करते हैं। पुस्तक समीक्षा सहित सभी स्तम्भ भी ज्ञानवर्धक है।

एक सुन्दर सजीले अंक को हम तक पहुँचाने के लिए समस्त संपादन– प्रबंधन परिवार के प्रति आभार एवं सभी रचनाकारों को बधाई और शुभकामनायें।

हम समवेत बढ़ें, संभाव्य अपने विश्वग्राम के मिशन में सफल हो, यही संकल्प हम सबका हो!

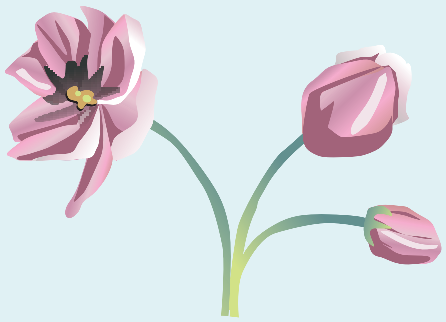

लोकवाणी

विश्वग्राम में मुस्कुराता संभाव्य

अंजली कुमारी
सपौल, बिहार

मानवता के मलेमास में सावन की तरह खिलता संभाव्य पत्रिका को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है। जीवन का सच्चा अस्तित्व कहीं बचा है। क्योंकि खाते हुए मानवता पर ये मुस्कान संभाव्य से ही संभव है। आज मानव के मरते हुए जमीर पर स्वामी विवकानंद का ये साहस जीवन में एक उम्मीद के तरह है। शायद कहीं मानवता को शर्मशार होने से हम बचा लें। हे महान् मानव आपका आमंत्रण किसी धन्यवाद का मोहताज नहीं है। जहाँ मनुष्य एक शहर एक गली एक व्यक्ति की बात करता है। वहाँ विश्वग्राम के इस भोज में सम्मलित होकर खुद को गोरान्वित महसुस करती हूँ। रिश्तों के टुटते हुए धाराओं के बीच संभाव्य वो घर है जिसमें लोग बसते हैं, जीते हैं और मुस्कुराते भी हैं। ये समझकर कि ये घर विश्वग्राम में है न किसी व्यक्ति के अधिकार में। हम मानव जन अगर ये ठान लें मनुष्य की मानवता को मरने नहीं देंगे तो संभाव्य के विश्वग्राम की संकल्या संभव हो जाएगी। संभाव्य में आये संस्थापक के संदेश का हरेक लक्ष्य अगर जीवन में उतर जाए तो निश्चित ही हम मानवता को बचा लेंगे।

तेरा हर लब्ज वहीं समझेगा
जिसे जीवन की पहचान हो
दरिंदो से कैसा गुजारिश
जहाँ मनुष्य होने का अफसोस हो
चलो ढुंढकर लाए विश्वग्राम से मानव
न जाने कहाँ, किस वंश में
मानवता शर्मशार हो।
हम तो बस इतनी दुआ कर रहे 'संभाव्य'
तु हर जीवन, हर घर, दहलीज की आस हो।

जीवन–संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में संभाव्य

नंदलाल साह
प्राचार्य
आर्य कन्या इंटर स्कूल, खगड़िया, बिहार
मो.: 9471282858

संभाव्य हिन्दी त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका के माध्यम से आज साहित्य अपने क्षेत्र में एक लंबे आत्मसंघर्ष के बाद अपने अस्तित्व में पुनः स्थापित होने जा रही है। आप का यह प्रयास सराहनीय एवं युगीन परिस्थितियाँ, विचारधराओं एवं भाषारूपों से समग्र है। ज़ाहिर है 'संभाव्य ' अपने रूप –शिल्प के आधार पर अपनी रचना–प्रक्रिया से हर प्रगतिशील चिंतकों के बीच सौंदर्य–दृष्टि की पुष्टि करेगी।

साहित्य मूलतः मनुष्य के जीवन के अनुभव और उसके पारस्परिक सम्बन्धों, विचारों तथा प्रतिक्रियाओं को ही प्रतिबिंबित करता है। इसमें मानव–मन के भीतर समाये हुए जगत का जो वैविध्य है, उस के प्रकटीकरण का संवेदनात्मक प्रकारों से आलेखन किया गया है। मैं इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

संभाव्य में चेतना के बीज का उद्गार

शंभुनाथ झा
प्राचार्य
महिला महाविद्यालय , भागलपुर, बिहार
मो.: 9905424890

'संस्थापक की कमल से' में निकले चेतना के बीज में संभाव्य के उद्गार दिखाई देते हैं। उसके प्रस्फुटन, संवर्धन और विकास से समस्त विश्वग्राम सौंदर्यबोध से अवश्यमेव आंदोलित होंगे। पूरी पत्रिका संभाव्य में सजीव संवेदनाओं का तरासा मूर्त–कथ्य है। आशा है – लोकप्रियता का शिखर देखूँ।

www.sambhavya.com

संभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर